जीवन आलोक

प्रवचन-क्रम

1. नाचो--जीवन है नाच..............................................................................2
2. नाचो--शून्यता है नाच.......................................................................17
3. नाचो--प्रेम है नाच...........................................................................42
4. नाचो--समग्रता है नाच.......................................................................56
5. नाचो--क्रांति है नाच.......................................................................67

जीवन आलोक
पहला प्रवचन

नाचो--जीवन है नाच

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक छोटी सी घटना से मैं अपनी आज की बात शुरू करना चाहता हूं।
एक महानगरी में सौ मंजिल एक मकान के ऊपर सौवीं मंजिल से एक युवक कूद पड़ने की धमकी दे रहा था। उसने अपने द्वार, अपने कमरे के सब द्वार बंद कर रखे थे। बालकनी में खड़ा हुआ था। सौवीं मंजिल से कूदने के लिए तैयार, आत्महत्या करने को उत्सुक। उससे नीचे की मंजिल पर लोग खड़े होकर उससे प्रार्थना कर रहे थे कि आत्महत्या मत करो, रुक जाओ, ठहर जाओ, यह क्या पागलपन कर रहे हो? लेकिन वह किसी की सुनने को राजी नहीं था। तब एक बूढ़े आदमी ने उससे कहाः हमारी बात मत सुनो, लेकिन अपने मां-बाप का खयाल करो कि उन पर क्या गुजरेगी? उस युवक ने कहाः न मेरा पिता है, न मेरी मां है। वे दोनों मुझसे पहले ही चल बसे। बूढ़े ने देखा कि बात तो व्यर्थ हो गई। तो उसने कहाः कम से कम अपनी पत्नी का स्मरण करो, उस पर क्या बीतेगी? उस युवक ने कहाः मेरी कोई पत्नी नहीं, मैं अविवाहित हूं। उस बूढ़े ने कहाः कम से कम अपनी प्रेयसी का खयाल करो। किसी को प्रेम करते होगे, उस पर क्या गुजरेगी? उस युवक ने कहाः प्रेयसी! मुझे प्रेम से घृणा है। स्त्री को मैं नरक का द्वार समझता हूं। मैं कोई स्त्री को प्रेम करता नहीं। मुझे कूद जाने दें। अंतिम बात रह गई थी कहने को। उस बूढ़े ने कहाः कूदने के पहले एक बार यह सोच लो, किसी की फिकर मत करो, लेकिन अपनी तो फिकर करो! अपना जीवन नष्ट कर रहे हो? उस युवक ने कहाः काश! मुझे पता होता कि मैं कौन हूं, तो शायद जीवन नष्ट करने की बात ही न आती। लेकिन मुझे यह भी पता नहीं कि मैं कौन हूं। पता नहीं वह युवक कूद गया, नहीं कूद गया, लेकिन उस युवक ने यह कहा कि मुझे यह भी पता नहीं है कि मैं कौन हूं। बच कर क्या करूंगा? जीवित रह कर भी क्या करूंगा?
जिस जीवन में यह भी पता न हो कि हम कौन हैं, उस जीवन का मूल्य और अर्थ क्या रह जाता है।
इस घटना से इसलिए अपनी बात शुरू करना चाहता हूं कि हम सब जीवन में करीब-करीब ऐसी ही हालत में खड़े हैं जहां हमें कोई भी पता नहीं कि हम कौन हैं। अपने होने का ही कोई बोध नहीं है। जीते हैं, लेकिन जीवन से कोई साक्षात्कार नहीं हुआ है। श्वास लेते हैं, चलते हैं, उठते हैं, बैठते हैं, फिर एक दिन समाप्त हो जाते हैं। लेकिन ज्ञात नहीं हो पाता कि कौन था जो जन्मा, कौन था जो जीआ, कौन था जो समाप्त हो गया।
इतने अज्ञान से भरे हुए जीवन में कोई आनंद हो सकता है? इतने अज्ञान से भरे हुए जीवन में कोई प्रेम हो सकता है? इतने अज्ञान से भरे जीवन में कोई उपलब्धि हो सकती है? इतने अज्ञान से भरे जीवन में कोई अर्थ, कोई प्रयोजन, कोई सार्थकता हो सकती है? नहीं हो सकती है, नहीं है। इसीलिए मनुष्य-जाति इतनी उदास, इतनी चिंतित, इतनी भयभीत, इतनी दुखी, इतनी विपन्न मालूम पड़ती है। जैसे कोई वृक्ष की जड़ें हिला दी गई हों, जैसे किसी वृक्ष को जड़ों से उखाड़ दिया गया हो, ऐसी मनुष्य-जाति अपरूटेड, जैसे सारी जड़ें हिल गई हों, ऐसी मालूम पड़ती है।
ये जड़ें किस चीज से हिल गई हैं? मनुष्य को यह भी पता न रह जाए कि मैं कौन हूं तो उसकी जड़ें जीवन से हिल जाती हैं। जीवन का, शुभ जीवन का, सुंदर जीवन का, आनंदपूर्ण जीवन का अगर कोई आधार हो सकता है तो एक ही हो सकता है कि व्यक्ति कम से कम इतना तो जान ले कि वह कौन है, और क्या है और किसलिए है? मनुष्य के सामने हमेशा से खड़ा हुआ प्रश्न एक ही है, और हम अपने को कितना ही भुलाने की कोशिश करें, कितना ही उलझाने की कोशिश करें, वह प्रश्न हमारे सामने से हटता नहीं, जब तक कि हल न हो जाए। हम कितना ही धन इकट्ठा कर लें और कितने ही महल इकट्ठे कर लें और कितना ही यश अर्जित कर लें, लेकिन एक प्रश्न बीच-बीच में बार-बार खड़ा हो जाता है--मैं कौन हूं? मैं किसलिए हूं? इस जीवन का अर्थ क्या है? फिर हम काम में लग जाते हैं कि भूले रहें, भूले

रहें। लेकिन यह प्रश्न पीछा नहीं छोड़ेगा। यह जीवन का पहला प्रश्न है, और पहले प्रश्न को ही जो हल नहीं कर पाता वह कुछ भी हल नहीं कर पाएगा। जीवन भर यह प्रश्न उसका पीछा करेगा, और जिस आदमी का यह प्रश्न पीछा करता है कि मैं कौन हूं, वह आदमी कभी भी निश्चिंत नहीं हो सकता। उसके जीवन में चिंता बनी ही रहेगी, बनी ही रहेगी।
हमारी स्थिति वैसी ही है जैसी कोई आदमी यात्रा पर निकला हो, और उसे यह
भी पता न हो कि मैं कहा जा रहा हूं। वह ट्रेन में बैठ गया हो और उसे यह भी पता न हो कि मुझे किस स्टेशन पर पहुंच जाना है। वह पच्चीस तरह से अपने को भुलाने की कोशिश करता हो, अखबार पढ़ता हो, रेडियो खोलता हो, पड़ोसियों से बात करता हो, लेकिन थोड़ी बहुत देर में उसे फिर यह खयाल आ जाता है कि मैं जा कहा रहा हूं! यह ट्रेन मुझे कहां ले जाएगी? मुझे किस स्टेशन पर उतर जाना है? वह प्रश्न उसका पीछा करेगा। करेगा। स्वाभाविक है कि पीछा करे। क्योंकि जिस यात्री को यात्रा के लक्ष्य का ही कोई पता न हो--और हम तो ऐसे यात्री हैं जिन्हें यात्रा के लक्ष्य का ही पता नहीं--जिन्हें यह भी पता नहीं कि यात्री कौन है? मैं कौन हूं? हम न केवल यह नहीं जानते हैं कि हमें कहां पहुंचना है; न केवल हम यह नहीं जानते हैं, हमें कहां उतर जाना है; न हम यह जानते हैं, हमें किस दिशा में यात्रा करनी है; हमें यह भी पता नहीं है कि मैं कौन हूं जो यात्रा करने वाला हूं।
तो यदि मनुष्य विपिन्न मालूम पड़ता हो, चिंतित, भयातुर, घबड़ाया हुआ, तो आश्चर्य ही क्या है? स्वाभाविक है। जब तक मनुष्य जीवन के इस प्राथमिक प्रश्न का उत्तर न खोज ले तब तक उसके जीवन में आनंद की कोई वर्षा नहीं हो सकती है। न वह आत्म-विश्वस्त हो सकता है, न वह निश्चिंत हो सकता, न उसके तनाव समाप्त हो सकते, न उसकी अशांति समाप्त हो सकती, न उसकी पीड़ा बंद हो सकती, न उसके दुख से छुटकारा हो सकता। फिर वह कितने ही उपाय करता रहे, वे सब उपाय अपने वास्तविक प्रश्न और जीवन की वास्तविक समस्या को भुलाने के उपाय हैं। भुलाने से कोई बात भूलती नहीं। जितना हम भुलाने की कोशिश करते हैं वह उतनी ही प्रबल होकर सामने खड़ी हो जाती है। आदमी के जन्म से लेकर मृत्यु तक एक प्रश्न पीछा करता है, मैं कौन हूं और किसलिए हूं?
और अगर इसका कोई पता नहीं चलेगा तो फिर शास्त्र ने जैसा कहा है, मैन
इ.ज ए यूजलेस पैशन। शास्त्र कहता है, आदमी एक व्यर्थ वासना है जिसमें कोई अर्थ नहीं। तो फिर अंत में यही दिखाई पड़ेगा कि आदमी एक व्यर्थ की दौड़-धूप है, एक अर्थहीन कथा, जिसका न कोई प्रारंभ, न कोई अंत, न जिसका कोई उद्देश्य। तो ऐसे व्यर्थ जीवन में शांति हो सकती है? ऐसे मीनिंगलेस एक्झिस्टेंस में, ऐसे अर्थहीन अस्तित्व में प्राण निश्चिंत हो सकते हैं? इतनी व्यर्थता के बीच प्रेम का जन्म हो सकता है? इतनी व्यर्थता के बीच, कोई सत्य, कोई शिव, किसी सुंदर का अवतरण हो सकता है? इसलिए इसी संबंध में थोड़ी बात मुझे आपसे कहनी है।
मैं कहना चाहता हूं, मनुष्य एक व्यर्थ वासना नहीं है, यूजलेस पैशन नहीं है। मैं कहना चाहता हूं, जीवन एक अर्थहीन कथा नहीं है। मैं कहना चाहता हूं, जीवन एक सार्थक आनंद है। लेकिन केवल उन्हीं के लिए जो जीवन की पहेली को सुलझाने की हिम्मत दिखाते हैं। हम सब तो एस्केपिस्ट हैं। हम सब तो जीवन की पहेली की तरफ पीठ करके भागने वाले लोग हैं। जो जीवन से भागते हैं, अगर जीवन उन्हें आनंद न हो सके, तो इसमें दोष किसका, कसूर किसका? जीवन को आमने-सामने लेना है, जीवन का एनकाउंटर करना है। जीवन से मुठभेड़ लेनी है, जीवन का सामना करना है, तो जीवन का अर्थ खुलना शुरू हो जाता है। जो जीवन को आमने-सामने खड़े होकर देखने की हिम्मत दिखाता है, वही व्यक्ति इस समस्या को सुलझाने में समर्थ हो पाता है कि मैं कौन हूं।
लेकिन आदमी ने इस समस्या से बचने के बहुत से उपाय खोज लिए हैं--हल करने
के नहीं, बचने के। इस समस्या को सुलझा लेने के नहीं, समस्या से भागने के। हमारी शायद आदत यह हो गई है कि हम हर प्रश्न और समस्या से भागने के लिए कोई रास्ता खोज लेते हैं। अगर घर में कोई बीमार पड़ा है, अगर दिवाला निकल गया है, अगर धन की तंगी आ गई है, अगर जीवन चिंतित हो उठा है, तो कोई आदमी संगीत सुन कर अपने को भुला लेता है, कोई सिनेमा में बैठ कर अपने को भुला लेता है,

कोई शराब पीकर अपने को भुला लेता है। लेकिन भुलाने से कोई समस्या हल होती है? भुलाने से सिर्फ समस्या को हल करने की हमारी क्षमता और शक्ति क्षीण होती है। समस्या तो वहीं की वहीं खड़ी रहती है। हम और कमजोर वापस लौटते हैं। जितनी देर हम किसी समस्या को भुलाने की कोशिश करते हैं उतनी देर में हम और कमजोर हो जाते हैं। समस्या का सामना करने की हमारी सामर्थ्य और कम हो जाती है। जीवन की पूरी समस्या के साथ हम यही व्यवहार कर रहे हैं जो हम छोटी समस्याओं के साथ करते हैं। आदमी ने स्वयं को भूल जाने के लिए सब तरह के विकास कर लिए हैं। सारी शराबें, सारे मादक द्रव्य, सारी वे खोजें, जिन्हें आदमी मनोरंजन कहता है, वे सारी खोजें जीवन की वास्तविक समस्या को भुलाने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं करती।
किस बात को आप मनोरंजन कहते हैं? जहां आप घड़ी दो घड़ी अपने को भूल जाते हैं। संगीत में, सिनेमा में, शराब में, मित्रों में, मंडली में, भजन-कीर्तन में, मंदिर में, प्रार्थना में, जहां भी आप अपने को थोड़ी देर के लिए भूल जाते हैं, आप कहते हैं, बड़ा अच्छा लगा। लेकिन अपने को भूलना आत्मघाती है, सुसाइडल है। अपने को जानना है, भूलना नहीं है। भूल कर क्या हल होगा? कौन सी समस्या सुलझ जाएगी? नींद में पड़ जाने से कौन सी समस्या का अंत आ जाएगा? लेकिन आदमी ने आज तक अपने को भुलाने की कोशिश की है, उन लोगों ने तो कोशिश ही की है जिन्हें हम सांसारिक कहते हैं, जिन्हें हम धार्मिक कहते हैं। वे तथाकथित धार्मिक लोगों ने भी स्वयं को भुलाने की कोशिश की है।
प्रश्न है कि मैं कौन हूं? और इसके हमने कुछ रेडीमेड उत्तर तैयार कर रखे हैं जो कि भुलाने के लिए तरकीब का काम करते हैं। जब प्रश्न उठता है कि मैं कौन हूं? हम किताबों में खोजते हैं, शास्त्रों में खोजते हैं, वहां उत्तर मिल जाते है कि तुम तो परमात्मा हो, तुम तो ब्रह्मा हो, तुम तो आत्मा हो। फिर उन उत्तरों को हम पकड़ लेते हैं और दोहराने लगते हैंः मैं आत्मा हूं, मैं ब्रह्म हूं, मैं परमात्मा हूं। रोज सुबह-सांझ हम इसे दोहराने में लग जाते हैं। शायद हम सोचते होंगे कि दोहराने से समस्या हल हो जाएगी? शायद हम सोचते होंगे कि इस भांति किसी विचार को, शब्द को पकड़ कर बार-बार स्मरण करने से जीवन का प्रश्न समाप्त हो जाएगा। शब्द से ज्यादा असत्य और कुछ भी नहीं है। शब्द बिल्कुल ताश के पत्तों जैसा है। ताश के पत्ते दे दिए जाएं, तो हम तरकीब-तरकीब के घर बना सकते हैं ताश के पत्तों से, लेकिन ताश के पत्तों का घर हवा का जरा सा झोंका और गिर जाते हैं। शब्दों से भी जो हम घर बनाते हैं, शब्दों से भी जो हम अपने भीतर समस्याओं को हल करने की कोशिश करते हैं, वह ताश के पत्तों से भी कमजोर चीज है। शब्द का कोई प्राण ही नहीं, शब्द का कोई अस्तित्व नहीं। शब्द में कोई ठोसपन नहीं, शब्द तो बिल्कुल हवा में खींची गई लकीर की तरह है। और हमने सारी समस्याओं को शब्दों से हल करने की कोशिश की है। इसलिए समस्याएं तो वहीं की वहीं है, आदमी शब्दों में उलझ कर नष्ट हुआ जा रहा है। आदमी के ऊपर जो सबसे बड़ा दुर्भाग्य है, वह शब्दों के ऊपर विश्वास सबसे बड़ा दुर्भाग्य है, जिसके कारण जीवन की कोई समस्या हल नहीं हो पाती।
हमारे पास क्या है? ज्ञान के नाम पर हमारे पास शब्दों के अतिरिक्त कुछ
भी नहीं। किन्हीं के पास हिंदुओं के शब्द हैं, किन्हीं के पास मुसलमानों के शब्द हैं, किन्हीं के पास जैनों के शब्द हैं, किन्हीं के पास ईसाइयों के शब्द हैं। शब्दों के अतिरिक्त हमारे पास संपत्ति क्या है? अगर हम भीतर खोजने जाएं, तो शब्दों के अतिरिक्त हमारे पास क्या है? और शब्द का क्या मूल्य हो सकता है?
एक सम्राट के द्वार पर एक कवि ने एक दिन सुबह आकर सम्राट की प्रशंसा में कुछ गीत कहे, कुछ कविताएं कहीं। फिर कवि तो रुकते नहीं शब्दों का महल बनाने में। वे तो कुशल होते हैं। उन्होंने, उस कवि ने सम्राट को सूरज बना दिया, सारे जगत का प्रकाश बना दिया। उस कवि ने सम्राट को जमीन से उठा कर आकाश पर बिठा दिया, उसने अपनी कविता में जितनी प्रशंसा कर सकता था, की। सम्राट ने उससे कहाः धन्य हुआ तुम्हारे गीत सुन कर। बहुत प्रभावित हुआ। एक लाख स्वर्ण-मुद्राएं कल सुबह तुम्हें भेंट कर दी जाएंगी। कवि तो दीवाना हो गया। सोचा भी न था कि एक लाख स्वर्ण-मुद्राएं मिल जाएंगी! आनंद-

4

विभोर घर लौटा, रात भर सो नहीं सका। बार-बार खयाल आने लगा, एक लाख स्वर्ण-मुद्राएं! क्या करूंगा? न मालूम कितनी योजनाएं बना लीं। कवि था, शब्दों का मालिक था। बहुत शब्द जोड़ लिए। सारा भविष्य स्वर्णमय हो गया, सारा भविष्य एक सपना हो गया। जीवन एक धन्यता मालूम होने लगी।
सुबह जल्दी ही, सूरज निकल भी नहीं पाया कि द्वार पर पहुंच गया राजा के। सम्राट ने बिठाया और थोड़ी देर बाद पूछाः कैसे आए हैं? उस कवि ने सोचा, कहीं भूल तो नहीं गया सम्राट? पूछता है कैसे आए हैं? उसने कहा कि पूछते हैं कैसे आया हूं, रात भर सो नहीं सका, क्या पूछते हैं आप? कल कहा था आपने की एक लाख स्वर्ण-मुद्राएं भेंट करेंगे। सम्राट हंसने लगा, कहा, बड़े नासमझ हैं आप। आपने शब्दों से मुझे प्रसन्न किया था, मैंने भी शब्दों से आपको प्रसन्न किया था, इसमें लेने-देने का कहां सवाल आता है? कैसी एक लाख स्वर्ण-मुद्राएं? आपने कुछ शब्द कहे थे, कुछ शब्द मैंने कहे थे। शब्द के उत्तर में शब्द ही मिल सकते हैं। स्वर्ण-मुद्राएं कैसी? तब कवि को पता चला कि शब्द अपने में थोथे हैं, उनके भीतर कोई कंटेंट नहीं हैं। शब्द अपने आप में पानी पर खींची गई लकीरों से ज्यादा नहीं हैं। लेकिन हमारे पास क्या है? शब्दों के अतिरिक्त कुछ और है?
शब्दों पर हम जीते और लड़ते भी हैं। मैं कहता हूं, मैं हिंदू हूं। मैं कहता हूं, मैं मुसलमान हूं। कोई कैसे मुसलमान हो गया, कोई कैसे हिंदू हो गया? कुछ शब्द हैं जो कुरान से लिए गए हैं, कुछ शब्द हैं जो गीता से लिए गए हैं। कुछ शब्द हैं जो इस मुल्क में पैदा हुए है, कुछ शब्द है जो उस मुल्क में पैदा हुए हैं। और शब्दों को हमने इकट्ठा कर लिया, तो एक तरह के शब्द मुसलमान बना लेते हैं, दूसरे तरह के शब्द हिंदू बना देते हैं, तीसरे तरह के शब्द जैन बना देते हैं। क्योंकि किसी के भीतर कुरान है, किसी के भीतर बाइबिल है, किसी के भीतर गीता है। शब्दों के अतिरिक्त हमारी संपदा क्या है? और इन कोरे शब्दों पर हम लड़ते भी हैं और जीवित आदमी की छाती में तलवार भी भोंक सकते हैं, मंदिर भी जला सकते हैं, मस्जिद में आग भी लगा सकते हैं। क्योंकि मेरे शब्द अलग हैं, आपके शब्द अलग हैं।
आदमी शब्दों पर जी रहा है हजार वर्षों से और सोच रहा है कि शब्दों में कोई बल है, कोई संपदा है, कोई संपत्ति है। शब्द एकदम बोझ हैं, लेकिन शब्दों से भ्रम जरूर पैदा होता है। जैसे उस कवि को भ्रम पैदा हुआ एक लाख स्वर्ण-मुद्राओं का। रात भर उसे उसने गिनती की। हाथ में स्वर्ण-मुद्राएं मालूम पड़ीं। रात भर उसने सपने बनाए कि अब क्या करूं और क्या न करूं? कितना बड़ा भवन बनाऊं, कितना बड़ा रथ खरीदूं, कितना बड़ा बगीचा लगाऊं, क्या करूं, क्या न करूं? लेकिन हाथ में कुछ भी न था। एक लाख स्वर्ण-मुद्रा का शब्द था। शब्द से उसने फैलाव कर लिया।
हमारे हाथ में क्या है? आत्मा, परमात्मा, मोक्ष, जन्म, जीवन, प्रेम, आनंद हमारे पास शब्दों के अतिरिक्त और क्या है? लेकिन शब्द से जरूर भ्रम पैदा होता है। छोटा सा बच्चा स्कूल में पढ़ता है, सी ए टी कैट, कैट यानी बिल्ली। बार-बार पढ़ता है, सी ए टी कैट, कैट यानी बिल्ली। सी ए टी कैट, कैट यानी बिल्ली। सीख जाता है, फिर वह कहता है कि मैं जान गया--कैट यानी बिल्ली। लेकिन उसने जाना क्या है? उसने दो शब्द जाने। कैट भी एक शब्द है, बिल्ली भी एक शब्द है। बिल्ली को जाना उसने? बिल्ली जो जीवंत है, वह जो जीवित बिल्ली है उसको जाना उसने? लेकिन वह कहता है कि मैंने जान लिया--कैट यानी बिल्ली। उसने दो शब्द जान लिए, दोनों शब्दों का अर्थ जान लिया। शब्द भी शब्द है, अर्थ भी शब्द है। और बिल्ली पीछे छूट गई, वह जो जीवंत प्राण है बिल्ली का। उसे उसने बिल्कुल नहीं जाना, लेकिन वह कहेगा कि मैं जानता हूं कैट यानी बिल्ली। लेकिन बिल्ली को पता भी नहीं होगा कि मैं कैट हूं या बिल्ली हूं। बिल्ली को पता भी नहीं होगा कि आदमी ने मुझे क्या शब्द दे रखे हैं।
और आदमी जमीन पर न हो, तो बिल्ली का क्या नाम होगा? कोई भी नाम नहीं होगा। लेकिन बिल्ली फिर भी होगी। शब्द कोई भी न होगा, बिल्ली फिर भी होगी। आकाश में तारे होंगे, शब्द कोई न होगा। आदमी नहीं होगा तो सूरज उगेगा

लेकिन शब्द कोई भी नहीं होगा। वृक्षों में फूल खिलेंगे लेकिन कोई फूल गुलाब का नहीं होगा, कोई जूही का नहीं होगा, कोई चमेली का नहीं होगा।
शब्द आदमी का इनवेनशन है, आदमी की ईजाद है। लेकिन शब्द से एक भ्रम पैदा होता है। मैंने सीख लिया कि इस फूल का नाम गुलाब है, तो मैं समझता हूं, मैं गुलाब को समझ गया? मैंने शब्द सीख लिया कि इस फूल का नाम गुलाब है, तो मैं समझता हूं कि मैं गुलाब को समझ गया? शब्द सीख लेने से गुलाब को समझने का क्या संबंध है? लेकिन जो आदमी गुलाबों की जितनी जातियों के नाम जानता है, समझता है मैं गुलाबों का उतना ही बड़ा जानकार हूं। जितने प्रकार के गुलाबों के नाम बता सकता है, वह कहेगा कि मैं उतना जानकार हूं। जानकार वह किस चीज का है--गुलाब का या शब्दों का, नामों का? हो सकता है गुलाब से उसकी कोई पहचान ही नहीं हुई हो? गुलाब को उसने जाना ही न हो कभी? गुलाब के सौंदर्य ने उसे कभी पकड़ा ही न हो, गुलाब कभी उसकी आत्मा पर चित्र न बना हो, गुलाब कभी उसके भीतर प्रविष्ट न हुआ हो। कभी वह गुलाब के भीतर प्रविष्ट न हुआ हो। उसे गुलाब का कोई पता ही न हो, लेकिन वह कहता है, मैं जानता हूं, क्योंकि इस फूल का नाम गुलाब है।
हमने शब्द सीख रखे हैं, और शब्दों को ज्ञान समझ रखा है। आदमी को अज्ञान में बनाए रखने का सबसे बड़ा कारण यह है कि आदमी ने शब्दों को ज्ञान मान लिया है। जब तक शब्दों को ज्ञान समझा जाएगा तब तक मनुष्य-जाति के जीवन में ज्ञान का कोई जन्म नहीं हो सकता है। शब्द ज्ञान नहीं है। सत्य शब्द के पीछे है, सत्य शब्द से पहले है। सत्य शब्द मिट जाते हैं तब भी शेष रह जाता है। सत्य को हम शब्द देते हैं लेकिन सत्य शब्द नहीं है। लेकिन यह भूल पैदा हो जाती है।
कोई मुझे मिलता है, मैं पूछता हूं, आपका परिचय? वह बता देता, मेरा नाम राम है। फिर मैं दूसरे लोगों को कहता हूं, मैं राम को जानता हूं। मैं जानता क्या हूं? मैं एक शब्द जानता हूं राम, और इस आदमी का नाम राम है, इतना जानने को मैं कहता हूं, मैं जानता हूं, मैं परिचित हूं, मैं भलीभांति जानता हूं। लेकिन उस राम के पीछे क्या छिपा है, उस व्यक्ति में क्या छिपा है? उस शब्द के पार वह जो असली आदमी है वह क्या है? शब्द तो सिंबल है, प्रतीक है। वह असली आदमी, सब्स्टेंस क्या है? उसका मुझे कोई पता नहीं है। लेकिन हम नाम जान कर कहने लगते कि मैं परिचित हूं। हमने सब नाम सीख रखे हैं। हमने अपने बाबत भी नाम सीख रखे हैं--शरीर आत्मा, परमात्मा, सब हमने सीख रखे हैं। कोई पूछे कि कौन हैं आप? तो सीखा हुआ आदमी कहेगा, मैं आत्मा हूं। आत्मा अमर है। लेकिन सब शब्द हैं, कोरे शब्द हैं, किसी किताब में पढ़ लिए गए हैं। जाना कुछ भी नहीं गया है।
हम सब शब्दों की मालकियत कर बैठे हैं। शब्दों को पकड़ कर बैठ गए हैं।
और जो आदमी शब्दों का जितना कुशल कारीगर होता है वह उतना ज्ञानी मालूम पड़ता है। शब्दों से ज्ञान का कोई संबंध नहीं है। इसलिए हम पंडितों को ज्ञानी समझ लेते हैं। पंडित भूल कर भी ज्ञानी नहीं होता। होना भी चाहे तो नहीं हो सकता है जब तक कि पंडित होना मिट न जाए। दुनिया में अज्ञानियों को ज्ञान मिल सकता है लेकिन पंडितों को कभी नहीं मिलता है। क्योंकि शब्द पर उनकी इतनी पकड़ है गीता उन्हें कंठस्थ है बाइबिल उन्हें पूरी याद है, उपनिषद उन्हें पूरे रटे हुए हैं। वे वही बच्चों वाला काम कर रहे हैं--सी ए टी कैट, कैट यानी बिल्ली। वे उपनिषद कंठस्थ कर लिए हैं, गीता कंठस्थ कर ली है। जब भी पूछिए, तो गीता बोलना शुरू हो जाती है, उपनिषद निकलने शुरू हो जाते हैं। हमें लगता है, आदमी बहुत ज्ञानी है। लेकिन क्या निकल रहा है बाहर? सिवाय शब्दों के और कुछ भी नहीं। शब्द के कारण मनुष्य अपने को जानने से वंचित है।
फिर क्या रास्ता हो सकता है? शब्दों से कोई ऊपर उठे, तो स्वयं को जान सकता है? सत्य के पार उठे, शब्द को छोड़े, शब्द के पीछे जाए, फूल को छोड़ दे, शब्द को और जो फूल है उस तक पहुंचे। गुलाब को छोड़ दे, शब्द को और जो गुलाब का फूल है वस्तुतः उस तक जाए, तो शायद जान भी सकता है।
चीन में एक सम्राट था। उसने सारे राज्य में खबर की कि मैं एक राज-मोहर बनाना चाहता हूं। एक मुर्गे का चित्र बनाना चाहता हूं। सारे राज्य के बड़े-

बड़े कारीगर, कुशल कलाकार, चित्रकार, पेंटर मुर्गे का चित्र बना कर राजदरबार में उपस्थित हुए। बड़ी पुरस्कार के मिलने की संभावना थी। फिर जो आदमी जीत जाएगा उस प्रतियोगिता में वह राज्य का कला-गुरु भी नियुक्त हो जाएगा। वह शाही चित्रकार हो जाएगा। हजारों चित्र आए, एक से एक सुंदर चित्र था। राजा दंग रह गया। चित्र ऐसे मालूम पड़ते थे जैसे जिंदा मुर्गे हों, इतने जीवंत थे। बड़ी मुश्किल हो गई। कैसे तय करें कि कौन चित्र सुंदर है? भिन्न-भिन्न चित्र थे, सुंदर-सुंदर चित्र थे। एक बूढ़ा चित्रकार था राजधानी में। राजा ने उसे स्मरण किया और उसे बुलाया और कहा कि कोई चित्र चुनो। कौन सा चित्र सत्य है? कौन सा चित्र सर्वांग सुंदर है, उसी को हम राज्य की मोहर बना देंगे।
उसे बूढ़े चित्रकार ने द्वार बंद कर लिया। सुबह से सांझ तक वह कमरे के भीतर था। शाम को बाहर आया उदास। राजा से उसने कहाः कोई भी चित्र ठीक नहीं, कोई भी चित्र मुर्गे का नहीं है। राजा तो दंग रह गया! सब चित्र मुर्गों के थे। उसकी तो कठिनाई यह हो रही थी कि कौन चित्र सबसे सुंदर है? और उस चित्रकार ने आकर कहा कि चित्र मुर्गे के नहीं हैं। राजा ने कहाः क्या कहते हैं आप? क्या कसौटी है आपके जांचने की? क्या क्राइटेरियन है? कैसे आपने पहचाना? उसने कहाः मेरा एक ही क्राइटेरियन हो सकता था, एक ही मापदंड हो सकता था, मैं एक जानदार जवान मुर्गे को लेकर कमरे के भीतर गया और मैंने देखा मुर्गा पहचानता है किसी मुर्गे को कि नहीं? लेकिन मुर्गे ने ध्यान ही नहीं दिया चित्रों पर। हजार चित्र रखे थे वहां, वहां हजार मुर्गे थे। अगर मुर्गा एक भी मुर्गे को पहचानता तो बांग देता, चिल्ला कर खड़ा हो जाता, लड़ने की स्थिति में आ जाता या पास चला जाता, दोस्ती के लिए हाथ बढ़ाता, कुछ करता। लेकिन मुर्गा दिन भर रहा। सोया रहा, बैठा रहा, लेकिन एक चित्र को उसने नहीं देखा। राजा ने कहाः यह तो बड़ी मुश्किल हो गई। हमने तो सोचा भी नहीं था कि मुर्गों से पहचान करवाई जाएगी। अब क्या होगा?
उस बूढ़े ने कहाः मेरी उम्र ज्यादा हुई अन्यथा मैं कोशिश करता। लेकिन कौन जाने, बच जाऊं। कम से कम तीन साल लग जाएंगे, तो मैं कोशिश करूं।
राजा ने कहाः तीन साल! सत्तर साल का बूढ़ा था, सारे देश में प्रसिद्ध चित्रकार था। राजा ने कहाः एक साधारण से मुर्गे का चित्र बनाने में तीन साल?
उस बूढ़े ने कहाः चित्र बनाना तो बहुत आसान है, मुर्गे को जानना बहुत कठिन है। मुर्गे को जानना बहुत कठिन है। मुर्गे की आत्मा को इम्बाइब करना बहुत कठिन है। मुर्गे के साथ एक हो जाना बहुत कठिन है। और जब तक मैं मुर्गे से साथ एक न हो जाऊं, आत्मैक्य न हो जाए, जब तक मेरा उससे मिलन न हो जाए, तब तक मैं कैसे जानूं कि मुर्गा भीतर से क्या है? बाहर से जो दिखाई पड़ता है रंग, रेखा, उनसे कोई मुर्गे को नहीं पहचान सकता। मुर्गा भीतर क्या है? सत्य है बात। अगर गांधी को आप ऊपर से देखें, तो पहचान सकते हैं कि भीतर क्या है? ऊपर से तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता। सुकरात आपको बंबई के रास्तों पर मिल जाए, तो क्या पहचान लेंगे कि भीतर क्या है? जीसस क्राइस्ट आपको मिल जाए कहीं, पहचान लेंगे भीतर क्या है? आदमी ऊपर से दिखाई पड़ेगा, रूप दिखाई पड़ेगा, रंग दिखाई पड़ेगा, शक्ल दिखाई पड़ेगी, और क्या दिखाई पड़ेगा? ये तो प्रतीक हुए। लेकिन भीतर यह आदमी क्या है, कैसे दिखाई पड़ेगा?
उस बूढ़े ने कहाः बहुत मुश्किल है, आदमी का चित्र भी बनाना होता तो भी आसान था, क्योंकि मैं भी एक आदमी हूं, भीतर से जान सकता हूं कि आदमी क्या होता है। लेकिन मुर्गा? मैं मुर्गा नहीं हूं। मुर्गा भीतर से कैसा अनुभव करता है, उसकी आत्मा क्या है, यह मैं कैसे जानूं?
राजा ने कहाः कोशिश करें, चित्र तो चाहिए जल्दी।
वह बूढ़ा जंगल में चला गया। छह महीने बीत गए। तो राजा ने आदमी भेजे कि पता लगाओ, वह बूढ़ा जिंदा है या मर गया? छह महीने हो गए, कोई खबर नहीं आई।
आदमी गए, तो देखा, जंगली मुर्गों के बीच में वह बूढ़ा बैठा हुआ था चुपचाप।
छह महीने बीत गए थे। वह जंगली मुर्गों की भीड़ में बैठा था चुपचाप।
निरीक्षण करता था, ऑब्जर्व करता था, शायद आत्मैक्य के लिए कोई उपाय करता था। उसने लोगों को हटा दिया और कहाः जाओ, बीच-बीच में बार-बार मत आना।

तुम्हारे आने से बाधा पड़ती है। मुझे याद आ जाता है कि मैं आदमी हूं। और जैसे मुझे याद आता है मुर्गा मेरे हाथ से छूट जाता है। तुम यहां बार-बार मत आना। तीन साल बाद मैं आ जाऊंगा। तुम्हें बीच-बीच में देखता हूं तो मुझे फिर याद आ जाता है कि मैं आदमी हूं। छह महीने में मैंने कोशिश की थी कि मैं मुर्गा हूं, वह भूल जाता है, वह हाथ से छूट जाता है।
तीन साल बाद लोग गए। उस बूढ़े को तो पहचानना मुश्किल हो गया। वह तो एक पहाड़ी किनारे खड़े होकर, मुर्गे की आवाज उससे निकल रही थी। उन्होंने उसे जाकर हिलाया और कहाः यह क्या हो गया? आपसे मुर्गे की आवाज निकल रही है? उस बूढ़े ने कहाः आ गया पकड़ में मुर्गा। इन तीन सालों में सब शब्द छोड़ दिए थे। इन तीन सालों में मुर्गे को मैं जानता हूं, यह खयाल छोड़ दिया। डूब गया उसके साथ, एक हो गया। अब चलता हूं। राज दरबार में जाकर खड़ा हुआ और उसने मुर्गे की आवाज में बांग दी।
राजा ने कहाः पागल हो गए हो मालूम होता है। हमने बुलाया था चित्र, तुम मुर्गा बन जाओ नहीं कहा था। चित्र कहां है?
उस कलाकार ने कहाः चित्र तो अब एक क्षण की बात है। सामान बुला लें, मैं चित्र यहीं बना दूंगा। लेकिन अब मैं जान कर लौटा हूं कि मुर्गा भीतर से क्या है, कैसा है? मैं उसके साथ एक होकर लौटा हूं। क्षण भर भी नहीं लगा, सामान आया और उसने चित्र बना कर सामने रख दिया। हाथ उठा कर लकीर खींच देनी थी। और राजा ने कहाः एक मुर्गा ले आओ। मुर्गा आया। दरवाजे पर ही उसने देखा कि चित्र है, उसने खड़े होकर--युद्ध के भाव से खड़ा हो गया, मुर्गे ने पहचान लिया कि सामने एक मुर्गा है। राजा ने कहाः जीत गए तुम। मापदंड पूरा हो गया। मैं तो सोचता था कि मुर्गा क्या पहचानेगा कि चित्र मुर्गे का है!
ये जो हमारे शब्द हैं--गुलाब का फूल, जूही का फूल, सूरज, पत्नी, बेटा, मां, बाप, ये शब्द बीच में खड़े हो जाते हैं, हमें किसी से भी एक नहीं होने देते। दूसरों की बात तो अलग। यह आत्मा हूं मैं, परमात्मा हूं मैं, ब्रह्मा हूं, अहं ब्रह्मास्मि, ये शब्द बीच में खड़े हो जाते हैं। स्वयं से भी एक नहीं होने देते। जिससे हम एक हैं उससे भी बीच में दीवाल खड़ी कर देते हैं। विचारक शब्दों का धनी होता है। और इसलिए विचारक सत्य को कभी नहीं जान पाता। सत्य को वे लोग जान पाते हैं, स्वयं के सत्य को, मैं कौन हूं? इस जीवन की प्राथमिक समस्या को वे लोग हल कर पाते हैं जो सारे शब्दों को छोड़ कर निःशब्द में प्रवेश करते हैं। जो शब्द को छोड़ कर शून्य में प्रवेश करते हैं।
शब्द को कैसे छोड़ा जा सकता है? बड़ी कठिनाई है। चौबीस घंटे हम शब्दों में जीते हैं। सोते हैं तो शब्दों में, जागते हैं तो शब्दों में। एक छोटा सा शब्द और हमारा हृदय खिल कर एक फूल बन जाता है। और एक छोटा सा शब्द और हमारा क्रोध का जागरण हो जाता है, हृदय एक अंगार बन जाता है। एक छोटा सा शब्द और हम दुखी हो जाते हैं। एक छोटा सा शब्द और हम आकाश में तैरने लगते हैं। हमारा सारा जीवन शब्दों का हैं, सारा जीवन शब्दों का है। जागते हैं तो शब्दों में, सोते हैं तो शब्दों में। रात भर शब्द और स्वप्न और शब्द और सुबह से उठे कि वह शब्दों का व्यापार फिर शुरू हो जाता है। जैसे किसी झील के ऊपर काई छा गई हो, पत्ते ही पत्ते फैल गए हों, पूरी झील ढंक गई हो, कुछ दिखाई न पड़ता हो, ऐसे शब्दों ही शब्दों में हमारी पूरी चेतना ढंक गई है, और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता है, सिवाय शब्दों के कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है। आप भीतर जाइए और शब्द ही शब्द, शब्द ही शब्द मिलेंगे। इन शब्दों से छूटे बिना कोई स्वयं को नहीं जान सकता है। लेकिन हमारी सारी शिक्षा शब्दों की शिक्षा है। सारा समाज शब्दों पर जीता है। सारा जीवन शब्दों की संपदा का व्यापार करता है। निःशब्द की तो कोई संभावना नहीं, कोई मौका नहीं। शून्य हो जाने का, शब्द से मुक्त हो जाने का तो कोई अवसर नहीं है। जब तक यह अवसर हम न जुटा लें, तब तक हमें पता नहीं चल सकता कि मैं कौन हूं? जीवन क्या है? यह कैसे होगा? दो बातें समझ लेनी जरूरी है। पहली बात, शब्द को हम किस भांति सीखते हैं, इस सूत्र को समझ लेना जरूरी है, तो हम यह भी सीख सकते हैं कि शब्द को कैसे भूला जा सकता है।

एक सुबह बुद्ध अपने भिक्षुओं के बीच बोलने गए लोगों ने देखा वे अपने हाथ में एक रेशमी रूमाल लिए हुए हैं। वे जाकर बैठ गए। बैठ कर उन्होंने रूमाल खोला, उसमें एक गांठ लगाई, फिर दूसरी गांठ लगाई, फिर तीसरी गांठ लगाई, फिर और गांठें लगाईं। पूरा रूमाल गांठों से भर गया। भिक्षु चुपचाप देखते रहे कि वे क्या कर रहे हैं। फिर उन्होंने कहाः भिक्षुओं मैं रूमाल लेकर आया था और उसमें कोई गांठ न थी, अब रूमाल में गांठें ही गांठें लग गई हैं। मैं तुमसे यह पूछता हूं, यह वही रूमाल है या दूसरा रूमाल है?
एक भिक्षु ने कहा कि एक अर्थ में तो वही रूमाल है, क्योंकि गांठ लगने
से रूमाल में कोई खास फर्क नहीं पड़ गया है। और एक अर्थ में रूमाल में बदलाहट हो गई है। पहला रूमाल सीधा साफ था, इसमें गांठें पड़ गई हैं।
बुद्ध ने कहाः मनुष्य की चेतना भी ऐसी ही है। शब्दों की गांठें पड़ जाती हैं चेतना पर, लेकिन चेतना वही है, फिर भी फर्क हो गया। रूमाल में गांठें लगी हैं, तो रूमाल व्यर्थ हो गया। उसका उपयोग नहीं किया जा सकता, उसे खोला नहीं जा सकता। रूमाल वही है, लेकिन गांठों लगा रूमाल व्यर्थ हो गया। उसे खोला नहीं जा सकता, उसका उपयोग नहीं किया जा सकता। इसलिए फर्क भी पड़ गया और फर्क नहीं भी पड़ा। मूलतः तो रूमाल वैसा का वैसा है, लेकिन उपयोगिता भिन्न हो गई। फिर बुद्ध ने पूछाः मैं यह पूछता हूं, इन गांठों को कैसे खोला जाए? क्या मैं इस रूमाल को खींचूं? उन्होंने रूमाल खींचा, गांठें ओर छोटी हो गईं और मजबूत हो गईं। एक भिक्षु ने कहाः अगर आप रूमाल खींचते ही गए, तो गांठें और मजबूत हो जाएंगी, खुलेंगी नहीं।
हम जीवन भर शब्दों की गांठें और खींचते चले जाते हैं, वे और मजबूत होती चली जाती हैं।
बुद्ध ने कहाः तो मैं कैसे खोलूं? तो एक भिक्षु ने कहाः इसके पहले कि मैं कुछ कहूं कि रूमाल कैसे खुलेगा, मैं यह देखना चाहूंगा कि गांठें बांधी कैसे गई हैं? क्योंकि जिस भांति बांधी गई होंगी, उलटे रास्ते से चलने से खुल जाएंगी। बुद्ध ने कहाः यह भिक्षु ठीक कहता है। गांठ कैसे बांधी गई है, जब तक यह न जान लिया जाए तब तक गांठ खोली नहीं जा सकती। यह भी हो सकता है, खोलने की कोशिश में गांठ और मजबूती से बंध जाए।
मनुष्य के मन पर शब्दों की गांठ कैसे बंध गई है यह जानना जरूरी हो तो खोलने का रास्ता भी साफ हो जाता है। जिस रास्ते से चल कर आप इस भवन तक आए हैं, उलटे चलेंगे तो आप अपने घर पहुंच जाएंगे। जिस रास्ते से गांठ बंधती है, उलटे जाएंगे तो गांठ खुल जाएगी। यह शब्दों ने मनुष्य के मन को ऐसा जकड़ रखा है... ।
कैसे जकड़ रखा है? क्या है प्रक्रिया शब्द के सीखने की? लर्निंग की प्रक्रिया क्या है? तो अनलर्निंग की प्रक्रिया उलटी प्रक्रिया होगी। तो मैंने कहा, छोटा बच्चा सीखता है। कैसे सीखता है? वह कहता है, सी ए टी कैट, कैट यानी बिल्ली, दोहराता है, दोहराता है, दोहराता है। रिपीट करता है, रिपीट करता है, रिपीट करता है, पुनरुक्ति करता है। पुनरुक्ति माध्यम है शब्द की गांठ बांधने का। जितना किसी चीज को दोहराइए, दोहराइए, दोहराइए, उतना शब्द की गांठ मन पर बैठती चली जाती है। पुनरुक्ति द्वार है, रास्ता है, मेथड है लर्निंग का, शब्दों के सीखने का रास्ता है पुनरुक्ति, रिपीटीशन। स्मृति खड़ी होती हैं पुनरुक्ति से। तो अपुनरुक्ति से गांठ खुल सकती है, अनलर्निंग पैदा हो सकती है, शब्द भूलें जा सकते हैं।
हम पुनरुक्ति तो सीख गए हैं बचपन से लेकिन अपुनरुक्ति हम नहीं जानते हैं कि क्या करें, क्या करें, क्या न करें। एक छोटा सा खयाल समझ में आ जाए तो अपुनरुक्ति का रास्ता समझ में आ सकता है। अनलघनग का मेथड समझ में आ सकता है। और जीवन के सत्य को जानने के लिए उसके अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं है।
श्री रमण से किसी ने आकर पूछा, एक जर्मन विचारक ने कि मैं क्या करूं, मैं सत्य को कैसे सीखूं? हाउ टु लर्न दि ट्रूथ? श्री रमण ने कहाः बात ही गलत पूछते हो। सत्य को सीखा नहीं जाता। इसलिए यह मत पूछो, हाउ टु लर्न दि ट्रूथ। यह पूछो, हाउ टू अनलर्न दी अनट्रूथ? यह मत पूछो कि सत्य को कैसे सीखें, इतना ही पूछो की असत्य को कैसे भूलें? असत्य अनलर्न हो जाए तो सत्य

प्रकट हो जाता है। झील के पत्ते अलग कर दिए जाएं तो झील प्रकट हो जाती है। पर्दा अलग कर दिया जाए तो प्रकाश सामने आ जाता है। द्वार खोल दिया जाए तो हवाएं भीतर प्रविष्ट हो जाती हैं। यह मत पूछो कि हवाओं को कैसे भीतर लाएं, यही पूछो कि द्वार कैसे खोले? यह मत पूछो कि प्रकाश कहां खोजें, यही पूछो कि आंख कैसे खोलें। श्री रमण ने कहाः पूछो कि अनलर्न कैसे करें? जो सीख लिया है, उसे भूलें कैसे? चेतना को वापस सरल और शुद्ध कैसे करें? कैसे करें? यही प्रश्न सबके सामने है।
हम सीख कर बैठ गए हैं। एक शब्द को भी भुलाना चाहें तो भुलाना कठिन है
और असंभव है। बल्कि जिस शब्द को आप भुलाना चाहेंगे वह और भी स्मरण में वापस लौटने लगेगा। किया होगा आपने भी कभी कोशिश। किसी चेहरे को आप भुला देना चाहते है। किसी स्मृति को भुला देना चाहते हैं और परेशान में पड़ जाते हैं। जितना भुलाना चाहते हैं, उतनी स्मृति वापस आने लगती है। आपको खयाल नहीं है कि भुलाने की कोशिश रिपीटीशन है। भुलाने की चेष्टा में पुनरुक्ति शुरू हो गई। आप बार-बार भुलाना चाहते हैं जिस चीज को, उसका बार-बार आपको स्मरण करना पड़ता है और बार-बार स्मरण करने से वह और मजबूत होती चली जाती है।
एक फकीर के पास एक युवक गया था और उसने कहा, मुझे कोई मंत्र दे दें, मैं कोई सिद्धी करना चाहता हूं। फकीर ने बहुत समझाया कि मेरे पास कोई मंत्र नहीं, कोई सिद्धि नहीं, लेकिन युवक माना नहीं। पैर पकड़ लिए। जितना इनकार किया फकीर ने, उतने ही पैर पकड़े। आदमी की आदत ऐसी है, जहां इनकार हो, वहां उसका आकर्षण बढ़ता है। जहां कोई बुलाए, वहां समझता है, बेकार है, कोई सार नहीं है। जिस दरवाजे पर लिखा है, यहां मत झांको, वहां उसका मन झांकने का होता है। जहां लिखा है, यहां झांकते हुए जरूर जाना वहां सोचता है, कुछ व्यर्थ होगा। झांकने की कोई जरूरत नहीं है।
फकीर इनकार करने लगा। जितना इनकार करने लगा उतना उसका आकर्षण बढ़ने लगा कि जरूर कोई बात है, जरूर कोई बात है, जरूर कोई बात है; आखिर फकीर परेशान हो गया, उसने एक कागज पर लिख कर मंत्र दे दिया और कहा, इसे ले जाओ, रात के अंधेरे में स्नान करके एकांत में बैठ जाना। पांच बार इस मंत्र को पढ़ लेना। तुम जो चाहोगे, वह शक्ति तुम्हें मिल जाएगी। वह युवक तो भागा। वह भूल भी गया कि धन्यवाद देना भी कम से कम जरूरी था। वह सीढ़ियां उतर ही रहा था तब उससे फकीर ने कहा, जरा ठहरो, मैं एक शर्त बताना भूल गया। पढ़ना तो मंत्र, लेकिन बंदर का स्मरण मत करना उस समय, अन्यथा सब गड़बड़ हो जाएगा।
उस युवक ने कहाः बेफिकर रहो, जिंदगी बीत गई, आज तक मैंने बंदर का स्मरण नहीं किया, अब क्यों करूंगा? लेकिन पूरी सीढ़ियां भी नहीं उतर पाया था कि बंदर दिखाई पड़ने शुरू हो गए। उसने आंख मिची, कोशिश की, लेकिन आंख खोलता है तो उसे बंदर का खयाल, आंख बंद करता है तो बंदर का खयाल। घर पहुंचा तो वह घबड़ा गया। अब कोई स्मरण ही नहीं है, सिर्फ बंदर का स्मरण रह गया। बहुत नहाता है, बहुत धोता है, बहुत भगवान की याद करता है, लेकिन हाथ जोड़ता है तो भगवान नहीं दिखाई पड़ता है, वहां बंदर ही बंदर दिखाई पड़ते हैं। रात हो गई और बंदर बढ़ने लगे। मंत्र पढ़ने का समय करीब आने लगा और बंदरों की भीड़ इकट्ठी हो गई। आंख बंद करता है तो कतारबद्ध बंदर खड़े हैं, वे दांत चिढ़ा रहे हैं, वे झपटने को तैयार है। वह तो पागल होने लगा। उसने कहाः हे भगवान! यह क्या हुआ? आज तक मुझे बंदर कभी याद नहीं आए थे, यह याद कैसे आने लगी? रात बीत गई, कई बार स्नान किया कई बार कागज हाथ में उठाया, लेकिन बंदर पीछा नहीं छोड़ते हैं। सुबह तक घबड़ा गया। सुबह तो मस्तिष्क घूमने लगा चक्कर खाने लगा। भागा हुआ गया फकीर के पास और कहा, आप अपना मंत्र सम्हालो, अब अगले जन्म में यह साधना हो सकेगी, इस जन्म में नहीं। और बड़े नासमझ मालूम पड़ते हो। अगर यह कंडीशन थी कि बंदर के स्मरण से मंत्र खराब हो जाता है तो कम से कम कल न बताते, आज बता देते तो पार हो जाती बात। रात दुनिया का कोई जानवर याद न आया। रात कोई धन याद न आया, कोई स्त्री याद न आई, कोई मित्र याद न आया, कोई शत्रु याद न आए, बस एक स्मृति रह गई--बंदर, बंदर, बंदर। उस फकीर ने कहाः मैं क्या करूं, इस मंत्र की शर्त ही यही है। यह शर्त कोई पूरी करे तो मंत्र सिद्ध होता है।

क्या होगा उस व्यक्ति का? जिन चीज को निकालना चाहता था, बार-बार निकालना चाहता था वह चीज पुनरुक्त होती चली गई, वह रिपीट होती चली गई, उसकी स्मृति गहरी होती चली गई, वह मन में बैठती चली गई।
शब्द को निकालने की कोशिश से कभी आप शब्द के बाहर नहीं हो सकते। विचार
को निकालने के प्रयास से कभी आप निर्विचार नहीं हो सकते। शांत होने की कोशिश से आप कभी शांत नहीं हो सकते, सोने की कोशिश से आप कभी सो नहीं सकते। कभी देखा, आपको नींद न आ रही हो और आप कोशिश कर रहे हैं कि मैं सो जाऊं। जितनी आप कोशिश करते हैं, नींद उतनी दूर होती चली जाती है। जितनी आप कोशिश करेंगे, उतने ही शब्द गहरे होते चले जाएंगे। इसलिए दुकान पर एक आदमी ज्यादा शांत होता है, मंदिर में जाता है तो और अशांत हो जाता है। पूजा करने बैठता है तो पाता है, न मालूम क्या-क्या आने लगा! जो कभी नहीं आता वह भी पूजा में क्यों आता है? पूजा करने के बैठने का संकल्प उसका यह है कि मन शांत रहे, विचार न आए, बुरे विचार न आए। तो फिर वही आने शुरू हो जाते हैं जिनको वह कहता है, मत आओ, क्योंकि जिसको वह कहता है मत जाओ, उसी के प्रति वह अपना आकर्षण जाहिर कर देता है। यह निमंत्रण हो जाता है।
तो हम आमतौर से न कभी शांत होते हैं, न कभी निर्विचार होते हैं। तो कैसे निःशब्द होंगे? साइलेंस कैसे आएगी? और उसके बिना कोई शब्द काम का कभी न हुआ, न हो सकता है। रास्ता है, और बड़ा सरल है। विचार को पुनरुक्त न करें। लेकिन पुनरुक्त न करने की विधि है--विचार को ऑब्जर्व करें, निरीक्षण करें। शब्द का निरीक्षण करें और आप हैरान रह जाएंगे, जिस शब्द का आप निरीक्षण करने का आप तय कर लेंगे वही शब्द आपकी आंखों से विलीन हो जाएगा। आपको खयाल भी नहीं होगा। आपकी पत्नी है, बीस साल से आपके पास है, उसे आपने इतना प्रेम किया है, लेकिन कभी एकांत में बैठ कर उसकी शक्ल आपने स्मरण की है? कभी एकांत में आपने खयाल किया है कि मेरी पत्नी का चेहरा कैसा है? आप कहेंगे, मैं जानता हूं, बिल्कुल मुझे याद आ जाएगा। मैं आपसे कहता हूं, आज ही आप जाकर कोशिश करना, और जितना आप निरीक्षण करने की कोशिश करेंगे नहीं आप पाएंगे कि सब धीरे-धीरे फीका होता जाता है। पत्नी का चेहरा भी पकड़ा जा सकता। पति का चेहरा भी ऑब्जर्वेशन के सामने नहीं टिकेगा। बाप का, मां का, जिनसे आप इतने परिचित हैं, जिनको आपने जीवन भर देखा है, कभी आंख बंद करके कोशिश करें कि मैं अपनी पत्नी, अपने पिता, अपने पति, अपने बेटे का पूरा चित्र आंख के सामने ले आऊं। ऑब्जर्व करें, निरीक्षण करें, आप आएंगे कि रेखाएं धुंधली हो गई। चेहरा पकड़ में नहीं आता कि मेरे पिता का चेहरा ऐसा है। थोड़ी देर में आप पाएंगे, चेहरा विलीन हो गया, वहां खाली जगह रह गई, वहां कोई चेहरा नहीं है।
मन की एक खूबी है कि चेतना जिस शब्द को भी निरीक्षण करना चाहे, ऑब्जर्व करना चाहे, वही शब्द तिरोहित हो जाता है। और जिस शब्द को भुलाना चाहे, वही शब्द वापस लौट आता है। शब्द को भूलने की कोशिश नहीं; शब्द का निरीक्षण, ऑब्जर्वेशन। चित्त में जो भी शब्द उठते हैं, उनका निरीक्षण, मात्र देखना, जस्ट सीइंग। और आप हैरान रह जाएंगे कि आपके निरीक्षण के प्रकाश में शब्द वैसे ही हवा हो जाते हैं जैसे सूरज के निकलने पर वृक्षों के ऊपर पड़े हुए ओस के बिंदु उड़ने लगते हैं। सूरज निकला और ओस के बिंदु उड़ने लगे, तिरोहित होने लगे, भागने लगे, समाप्त होने लगे। जैसे ही आपकी चेतना पूरे ध्यान से शब्दों को देखने की कोशिश करती है, शब्द उड़ने लगते हैं, हवा होने लगते हैं। और एक बार आपको यह सीक्रेट खयाल में आ जाए, यह रहस्य खयाल में आ जाए कि शब्द को देखने से शब्द की मृत्यु हो जाती है। उस दिन आपने अनलर्निंग का, भूल जाने का राज, रहस्य अनुभव कर लिया। और जिस आदमी को यह रहस्य मिल जाता है वह ध्यान को उपलब्ध हो जाता है। ध्यान का और कोई अर्थ नहीं है। मेडिटेशन का और कोई अर्थ नहीं है। ध्यान है शब्दों की मृत्यु और शब्दों की मृत्यु प्रक्रिया है ऑब्जर्वेशन, अवेयरनेस, कांशसनेस। किसी भी शब्द के प्रति पूरे सचेतन हो जाएं, शब्द विलीन हो जाएगा।
एक गुलाब के फूल के पास आप खड़े हैं। आपको खयाल आता है, यह गुलाब का फूल है, बस बाधा पड़ गई। फूल उन तरह रह गया, बीच में शब्द आ गया। अब जरूरी है कि शब्द को हटा दें बीच से ताकि फूल से संबंध हो सके। तो आंख बंद कर लें और "यह

गुलाब का फूल है" इस शब्द पर ध्यान ले जाएं, पूरा निरीक्षण ले जाएं, और इस शब्द को पकड़ने की कोशिश करें कि रुक जाओ, "यह गुलाब का फूल है" इस शब्द को मैं पूरी तरह देख लेना चाहता हूं। रुक जाओ, भागो मत। आप थोड़ी देर में पाएंगे कि वह रुका हुआ शब्द एवॉपरेट होने लगा, उड़ने लगा, भागने लगा। वह शब्द भाग जाए फिर आंख खोल कर गुलाब के फूल को देखें। और अगर फिर खयाल आ जाए कि यह गुलाब का फूल है, फिर आंख बंद कर लें, फिर उस शब्द को निरीक्षण करें। जब तक कि आप बिना शब्द के गुलाब के फूल को देखने में समर्थ न हो जाएं तब तक इस प्रक्रिया को जारी रखें। आप थोड़े ही दिन के प्रयोग में उस जगह पर पहुंच जाएंगे जहां आपकी आंख गुलाब के फूल को देखेगी लेकिन आपकी स्मृति नहीं कहेगी कि यह गुलाब का फूल है। सिर्फ देखते हुए आप रह जाएंगे। बीच में कोई शब्द नहीं उठेगा। और जिस दिन निःशब्द दर्शन हो जाता है उस दिन गुलाब के फूल से आपकी आत्मा एक हो गई। उस दिन आप जानेंगे कि क्या है गुलाब का फूल। उस दिन आप जानेंगे कि उस चित्रकार ने क्या जाना होगा कि मुर्गा होना क्या है। उस दिन आप जानेंगे, सूरज क्या है। उस दिन आप जानेंगे, चांदनी क्या है। उस दिन आप जानेंगे पत्नी क्या है, पिता क्या है, मित्र क्या है।
और जिस दिन आपको निःशब्द दर्शन की यह संभावना स्पष्ट होने लगेगी, उस दिन इसका अंतिम प्रयोग स्वयं पर किया जाता है। तब निःशब्द होकर अपने को देखा जा सकता है। और उस दिन आप जानेंगे कि मैं कौन हूं? उस दिन जीवन की पहली और बुनियादी समस्या हल होती है कि मैं कौन हूं? और जिसके समक्ष यह समस्या हल हो जाती है उसका जीवन एक बिल्कुल अभिनव, एक बिल्कुल नया जीवन हो जाता है। उसके जीवन में आमूल क्रांति हो जाती है। उसके जीवन में क्रोध की जगह क्षमा का जन्म हो जाता है। उसके जीवन में घृणा की जगह प्रेम का जन्म हो जाता है। उसके जीवन में भय की जगह अभय का जन्म हो जाता है। उसके जीवन में कांटे विलीन हो जाते और फूल खिल जाते हैं। उसके जीवन में अर्थहीनता नष्ट हो जाती है, सार्थकता पैदा हो जाती है। फिर उसे मनोरंजन की तलाश नहीं होती। फिर वह चौबीस घंटे तक आनंद की थिरक में नाचता रह जाता है। फिर श्वास-श्वास, फिर कण-कण, फिर उठना और बैठना भी प्रभु का नृत्य हो जाता है। फिर सब कुछ यह आनंद में बदल जाता है। फिर ऐसा जैसे जीवन के आनंद-सागर में कोई बहा जाता हो। सब तरफ फिर रोशनी दिखाई पड़ने लगती है और सब तरफ फिर सुगंध का अनुभव होने लगता है। और सब तरफ प्रभु भी छवि दिखाई पड़ने लगती है। फिर एक पत्ते में भी सारे विराट विश्व के दर्शन हो जाते हैं। फिर वैसा व्यक्ति जब एक फूल को देखता है, गुलाब के फूल को देखता है, तो उसे गुलाब का फूल नहीं दिखाई पड़ता, फिर फूल के पीछे की शाखाएं फिर शाखाओं के नीचे की जड़ें, फिर जड़ों से जुड़ी हुई पृथ्वी, फिर फूल पर आई हुई सूरज की किरणें, और सूरज सब संयुक्त दिखाई पड़ने लगता है फिर वह प्रविष्ट हो जाता है विराट में और सारे जीवन का दर्शन उसे शुरू हो जाता है।
लेकिन हम तो अपने को नहीं जानते, विराट जीवन को कैसे जान सकेंगे? और जब
हम अपने को नहीं जानते, तो हम और क्या जान सकेंगे? जब हम अपने से भी अज्ञान हैं, अपने से भी अजनबी, स्ट्रेंजर हैं, तो हम और किससे परिचित हो सकेंगे? यह सारा जीवन हमारा अपरिचित छूट जाता है क्योंकि हम अपने से ही अपरिचित हैं, और जो विराट संपदा मिल सकती थी--सौंदर्य की, सत्य की, आनंद की, उस सबसे हम वंचित रह जाते हैं। यह वंचित रह जाने के लिए और कोई जिम्मेवार नहीं है। अगर मैं वंचित रह जाता हूं, तो मैं ही जिम्मेवार हूं। यह दोष किसी और पर नहीं दिया जा सकता। यह कहना फिजूल है कि आदमी एक व्यर्थ वासना है। अगर आदमी व्यर्थ वासना है तो यह उस आदमी की भूल है। यह मैं आपसे कहना चाहता हूं, आदमी एक सार्थक उपलब्धि है। आदमी एक सार्थक अनुभूति है। आदमी का जीवन अपरिसीम अमृत को अपने भीतर छिपाए हुए है।
जैसे एक वीणा पड़ी हो किसी घर में और कोई बजाना न जानता हो और घर के लोग कहते हों फेंको इस सामान को, यहां घर में फिजूल जगह घेरे हुए है। ठीक हमारे पास जीवन की वीणा पड़ी है, लेकिन हम उसके तारों से परिचित नहीं हैं, हमें उसके राज मालूम नहीं हैं, हमें उसका बजाना पता नहीं हैं, तो घर में एक बोझ मालूम होता है। कई बार सोचते हैं, फेंक दो इसे। कई बार चूहे कूद जाते हैं, बच्चे कूद जाते हैं, वीणा में खन-खन की आवाज हो जाती हैं, घर में

डिस्टर्बेंस मालूम होता है, नींद टूट जाती है, हम कहते हैं, हटाओ इसको, व्यर्थ का सामान घर में पड़ा है, शोरगुल होता है। लेकिन कभी कोई वीणा को बजाने वाला कुशल हाथ वहां आ जाए और वीणा पर हाथ रख दे, तो सोए तार जाग उठेंगे, निष्प्राण तारों में प्राण पैदा हो जाएगा। घर एक संगीत से गूंज उठेगा। हम कल्पना भी न कर सकते थे कि इन तारों में इतना छिपा है।
घर में बीज पड़े हों, कंकड़-पत्थरों जैसे मालूम होते हैं बीज, सोचते हैं, फेंक दें इन्हें, क्या अर्थ है, क्या प्रयोजन है? लेकिन हमें पता नहीं, इन बीजों में वृक्ष छिपे हैं। हमें पता नहीं, इन बीजों में फूल छिपे हैं। हमें पता नहीं, इन बीजों में सुगंध छिपी है। काश, कोई माली आ जाए और उन बीजों को बो दे बगिया में, तो हम हैरान रह जाएंगे कि हमने कई बार सोचा था कि फेंक दें इन बीजों को। हमें पता भी नहीं था कि इन ठोस कंकड़ जैसे दिखते बीजों में इतने रहस्य छिपे होंगे, इतने सुनहले फूल उठेंगे, इतनी सुगंध बहेगी, हमें कभी कल्पना भी न थी।
जीवन भी एक वीणा की तरह है, जीवन भी एक बीज की तरह है। लेकिन जो उसके राज को खोलने में समर्थ हो जाता है, वह आनंद को उपलब्ध हो जाता है। जो उसके राज को नहीं खोल पाता है, वह दुख में जीता है, दुख में मरता है। मैं आपसे पूछना चाहता हूं, आप दुख में जी रहे हैं, पीड़ा में जी रहे हैं, चिंता में, उदासी में, अंधेर में? तो कोई और जिम्मेवार नहीं है सिवाय आपके। और आप चाहें तो आज भी जिंदगी को फूलों से भर सकते हैं। चाहे तो आज उस वीणा से संगीत पैदा हो सकता है। उस वीणा से कैसे संगीत पैदा हो सकता है, उस संबंध में एक छोटा सूत्र मैंने आपसे कहा है। लेकिन मेरे कहने से कुछ भी नहीं हो सकता, उस सूत्र पर आपके कदम आगे बढ़ जाएं, तो कुछ हो सकता है।
जीवन एक साधना है। जीवन जन्म के साथ नहीं मिलता; जन्म के साथ तो केवल पोटेंशियल, बीज-रूप संभावना मिलती है। जीवन तो अपने हाथ से निर्मित करना होता है। परमात्मा ने एक मौका दिया है आदमी को। जन्म देता है परमात्मा, जीवन नहीं देता। जन्म सिर्फ ऑपरच्युनिटी है, अवसर है। जीवन खुद को पैदा करना होता है। और जो खुद के जीवन को पैदा करने में समर्थ होता है वह आनंद को उपलब्ध होता है। आनंद हमेशा आत्म-सृजन की छाया है, सेल्फ क्रिएशन की छाया है। जब कोई व्यक्ति अपने जीवन को निर्मित कर लेता है तो आनंद से भर जाता है।
यह मौका है, लेकिन यह मौका खोया भी जा सकता है और हमसे अधिक लोग इस मौके को खोते हैं। आज तक मनुष्य-जाति के अधिकतम बीज व्यर्थ ही नष्ट हो गए हैं। मुश्किल से मनुष्य-जाति के इतिहास में दस पचास आदमी पैदा हुए हैं। जिनके बीजों में फूल आए, जिनकी वीणा में संगीत पैदा हुआ है। बाकी लोग ऐसे नष्ट हो गए हैं।
एक छोटी सी कहानी और अपनी बात मैं पूरी करूं।
एक सम्राट मरने के करीब था। उसके तीन बेटे थे। उसने उन बेटों की परीक्षा लेनी चाही कि किसको वह दे दे सारा राज्य। कौन सम्हाल सकेगा, कौन मालिक बन सकेगा? उसने कहाः मैं तीर्थ यात्रा पर जाता हूं। मुझे वर्ष दो वर्ष, तीन वर्ष लग सकते हैं। मैं तुम्हारी परीक्षा के लिए एक प्रयोग करना चाहता हूं। उसने एक-एक बोरा फूलों के बीज तीनों बेटों को दे दिए और कहा जब मैं लौटूं तो मैंने जो तुम्हें दिया है वह अमानत रही, वह मुझे वापस कर देना। देखो, वह नष्ट न हो जाए। बड़े बेटे ने सोचा कि ठीक है। कैसी परीक्षा है, क्या पागलपन है! उसने एक तिजोड़ी में ताला लगा कर वह बोरे भर बीज फूलों के बंद कर दिए। उसने कहाः जब बाप लौटेगा तो निकाल कर ताला वापस लौटा देंगे। तीन सालों में उन बीजों का वही हुआ जो होना था। सड़ गए और राख हो गए। दूसरे बेटे ने सोचा, इन बीजों को कहां रखे रहूंगा! कम बढ़ हो जाए, कुछ गड़बड़ हो जाए, बाजार में बेच दूं। बाप जब लौटेगा। फिर खरीद कर एक बोरा बीज दे देंगे। कौन पहचानेगा कि वही बीज है? बीजों में कोई नाम लिखा है, कोई सील लगी है? कौन झंझट सम्हालने की करेगा! उसने बाजार में बीज बेच दिए और रुपये लाकर तिजोड़ी में रख दिए। जब बाप आएगा, बीज खरीद कर वापस लौट दूंगा।
तीसरे लड़के ने कहाः बीज सम्हालने को बाप ने दिए हैं। बीज के सम्हालने
का एक ही रास्ता हो सकता है कि इसको बो दिया जाए। इनमें फूल आ जाएंगे। फिर

नये बीज आ जाएंगे। जब तक बाप लौटेगा एक बोरे के हजार बोरे हो जाएंगे। उसने बीज बो दिए। सम्हाल कर रखने का पागलपन क्या! इनका फायदा भी ले लो, इतने दिन फूलों की सुगंध भी ले लो! उसने बीज बो दिए, मौसमी बीज थे। चार महीने भी नहीं बीत पाए, बगिया फूलों से भर गई। सारा गांव प्रशंसा करने लगा। बाप जब तीन साल बाद लौटा तो कोसों तक, मीलों तक महल के आस-पास की भूमि फूलों से भरी थी। बाप ने आकर पूछा अपने बेटों को--बड़े को कि बीज कहां है? उसने तिजोड़ी खोली, वहां से राख और बदबू क्योंकि सब बीज सड़ गए थे। उसने कहाः यह रखे हैं जो आप दे गए थे। बाप ने कहाः पागल, ये फूलों के बीज थे और इनसे बदबू आ रही है। कौन है जिम्मेवार इस बात के लिए? पहला बेटा हार गया। दूसरे बेटे से कहाः बीज? उसने कहाः मैं अभी जाता हूं। रुपये निकाले, बाजार से खरीद लाता हूं। बाप ने कहा कि बीज मैंने तुझे सम्हालने को दिए थे, बेचने को नहीं। बेचने को नहीं दिए थे बीज, सम्हालने को दिए थे? दूसरा लड़का हार गया। क्योंकि जिसे सम्हालने को दिया गया हो उसे हम बेच दें।
कुछ लोग पहले लड़के की तरह हैं जिन्होंने जिंदगी के बीज को तिजोड़ियों में बंद कर रखा है। जिंदगी सड़ जाती है और बदबू निकलती है। कुछ लोग दूसरे लड़के की तरह हैं जो जिंदगी को बाजार में बेच रहे हैं, न मालूम कितने-कितने रूपों में। और जिस दिन मौत सामने आएगी, वे कहेंगे, हमने जिंदगी बेच दी। किसी ने धन में बेच दी, किसी ने यश में बेच दी। वे कहेंगे अपने पिता के सामने कि यह धन है, हमने जिंदगी बेच दी। ये तिजोड़ियां हैं, यह देखो। यह देखो हमारे पद। यह देखो कि मैं मंत्री था, मैं महामंत्री था, यह मैं प्रधानमंत्री था फलां मुल्क का। हमने जिंदगी बेच दी है और यह खरीद लिए पद, यह धन खरीद लिया है। यह सर्टिफिकेट देखो, यह प्रमाण-पत्र देखो। यह पद्मश्री, राज्यश्री की उपाधियां देखो। हमने बेच दी जिंदगी और यह खरीद कर हम ले आए। लेकिन उस बाप ने कहा कि जो कि मैंने सम्हालने को दिया था, वह बेचने को नहीं दिया था। और बेचना होता तो खुद बेच देता, तुझे सम्हाल कर देने की जरूरत क्या थी? बीज कहा हैं जो मैंने दिए थे? उसके हाथ में नोटों के रुपये हैं। कागज के रुपये हैं। अब कहां बीज जो फूल बन सकते थे, कहां कागज के नोट जो कुछ भी नहीं बन सकते।
वह तीसरे लड़के के पास पहुंचा कि बीज कहां है मेरे? उसने कहाः बाहर आ जाएं। क्योंकि बीज तिजोरियों में बंद नहीं किए जा सकते और न नोटों में बंद किए जा सकते। वे खेतों में फैल गए हैं। बाहर आ गए। मीलों तक बीजों के फूल हो गए हैं। फूल हवा में लहरा रहे हैं सूरज की रोशनी में। तितलियां उन पर उड़ रही है और पक्षी गीत गा रहे हैं। और बाप ने कहाः तू अकेला मालिक होने के योग्य है।
परमात्मा भी सबको बीज देता है जीवन के, लेकिन कुछ लोग पहले लड़के की तरह हैं, कुछ लोग दूसरे लड़के की तरह और बहुत थोड़े लोग तीसरे लड़के की तरह बीजों के साथ व्यवहार करते हैं।
मैं आपसे प्रार्थना करता हूं, तीसरे लड़के पर ध्यान रखना। कहीं आप पहले दो लड़कों के जैसे सिद्ध न हों। वह तीसरे लड़के अगर आप हो जाएं तो आपके जीवन की बगिया में भी इतने ही फूल, इतनी ही सुगंध इतने ही गीत गाते पक्षी निश्चित ही पैदा हो सकते हैं। परमात्मा करे आपका जीवन फूलों की एक बगिया बने।
वह कैसे बन सकता है, थोड़ी सी बात मैंने आपसे कही।

आपने मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं।
मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

नोटः सोलह मिनट का (अननोन नंबर 2)ऑडियो मिल गया है--इसकी टेप चेकिंग होनी है।

जीवन आलोक
दूसरा प्रवचन

नाचो--शून्यता है नाच

एक बहुत अच्छा प्रश्न पूछा है।
पूछा हैः श्रद्धा के बिना शास्त्र का अध्ययन नहीं, अध्ययन के बिना ज्ञान नहीं और ज्ञान के बिना आत्मा का अनुभव नहीं होगा।

"श्रद्धा के बिना शास्त्र का अध्ययन क्यों नहीं होगा?"
हमारी धारणा ऐसी है कि या तो हम श्रद्धा करेंगे या अश्रद्धा करेंगे।
हमारी धारणा ऐसी है कि या तो हम किसी को प्रेम करेंगे या घृणा करेंगे। तटस्थ हम हो ही नहीं सकते। जो श्रद्धा से शास्त्र का अध्ययन करेगा वह भी गलत, जो अश्रद्धा से शास्त्र का अध्ययन करेगा वह भी गलत है। शास्त्र का ध्यान तटस्थ होकर करना होगा। तटस्थ होकर ही कोई अध्ययन हो सकता है। श्रद्धा का अर्थ हैः आप पक्ष में पहले से मान कर बैठ गए, पक्षपात से भरे हैं। अश्रद्धा का अर्थ हैः आप पहले से ही विपरीत मान कर बैठ गए, आप पक्षपात से भरे हैं। पक्षपातपूर्ण चित्त अध्ययन क्या करेगा? पक्षपातपूर्ण चित्त तो पहले से पक्ष तय कर लिया। वह शास्त्र में अपने पक्ष के समर्थन में दलीलें खोज लेगा और कुछ नहीं करेगा। पक्षपात शून्य होकर ही कोई अध्ययन कर सकता है। इसलिए मुझे श्रद्धा भी व्यर्थ मालूम होती है, अश्रद्धा भी व्यर्थ। असल में श्रद्धा अश्रद्धा दोनों ही अश्रद्धाएं हैं।
एक आदमी ईश्वर पर श्रद्धा करता है, एक आदमी ईश्वर पर अश्रद्धा करता है। असल में अगर हम गौर से देखें, तो उनमें एक ईश्वर के होने पर श्रद्धा करता है, एक ईश्वर के न होने पर श्रद्धा करता है। वे दोनों ही श्रद्धाएं हैं। अश्रद्धा भी श्रद्धा ही है--विपरीत श्रद्धा है। इसलिए न तो श्रद्धा और न अश्रद्धा। पक्षपात शून्य होकर ही कोई सम्यक अध्ययन कर सकता है। हमारे इस जगत में वैसा सम्यक अध्ययन बहुत कम लोग करते हैं। परिणाम में भी कुछ उपलब्ध नहीं होता।
दूसरी बात उन्होंने कहीः "शास्त्र के अध्ययन के बिना ज्ञान नहीं।" जिन्होंने भी पूछा है, वे शायद पांडित्य को ज्ञान समझ रहे हैं।
शास्त्र के अध्ययन से पांडित्य उपलब्ध होगा, ज्ञान उपलब्ध नहीं होगा। ज्ञान उपलब्ध नहीं करना है, ज्ञान तो हमारा स्वरूप है। शास्त्र से स्वरूप का कैसे पता चलेगा? और अगर शास्त्र से स्वरूप का पता चल जाता, तो शास्त्र अध्ययन करवा देना बहुत कठिन बात नहीं है, आत्म-ज्ञान बहुत आसान हो जाता। दुनिया में ऐसे लोग हुए जिन्होंने कोई शास्त्र नहीं पढ़े और आत्म-ज्ञान को उपलब्ध हुए। रामकृष्ण थे या ईसा थे। ये कुछ पढ़े-लिखे लोग नहीं थे, लेकिन इन्हें ज्ञान उत्पन्न हुआ। और दुनिया में ऐसे पढ़े-लिखे लोगों की भीड़ है, जिनका चित्त पूरा शास्त्र से भरा हुआ है और उन्हें आत्म-ज्ञान का कोई पता भी नहीं है।
शास्त्र के अध्ययन से आत्म-ज्ञान का कोई संबंध नहीं है। आत्म-ज्ञान
का संबंध साधना से है, अध्ययन से नहीं है। आत्म-ज्ञान का संबंध... और ज्ञान की नहीं कह रहा--इंजीनियरिंग पढ़नी हो, डाक्टरी पढ़नी हो, तो शास्त्र-ज्ञान से हो जाएगा। पर के संबंध में कोई सूचना पानी हो, शास्त्र से हो जाएगी। स्व के संबंध में कोई बोध शास्त्र से नहीं हो सकता। शास्त्र तो विचार को परिपक्व कर देंगे। आत्म-ज्ञान तो विचार के छूटने से होगा। शास्त्र तो बुद्धि को एक विशिष्ट तर्क से भर देंगे।
जैसे सोवियत रूस है, उन्होंने चालीस वर्षों से अपने बच्चों को ईश्वर
और आत्मा विरोधी शास्त्र पढ़ाए। चालीस वर्षों में सोवियत रूस के बीस करोड़ लोग--ईश्वर और आत्मा नहीं है, ऐसा उनके ज्ञान हो गया। चालीस वर्ष के प्रचार प्रोपेगेंडा ने सोवियत रूस में यह स्थिति पैदा कर दी कि बीस करोड़ लोगों को यह ज्ञान हो गया कि आत्मा और ईश्वर नहीं है। इसको ज्ञान कहिएगा? इसको ज्ञान नहीं कह सकते। यह केवल विचार का परिपक्व कर देना हो गया एक पक्ष में।

और आप सोचते हैं, आपको आत्मा का ज्ञान हो गया है, तो आप भी गलती में हैं। आपका मुल्क भी पांच हजार वर्ष से प्रचार कर रहा है कि आत्मा है, आत्मा है, ईश्वर है। उस प्रोपेगेंडा से आप प्रभावित हैं। एक प्रोपेगेंडा से वे प्रभावित हैं। एक प्रचार उनके चित्त में बैठ गया, एक प्रचार आपके चित्त में बैठा है। दोनों ही प्रचार हैं। प्रचार से एक विचार परिपक्व हो जाता है, अनुभव नहीं होता। मेरा मानना है, अगर उनको सत्य का अनुभव करना है तो अपना प्रचार छोड़ देना पड़ेगा। आत्म-सत्य का अनुभव करना है तो अपना प्रचार छोड़ना पड़ेगा। प्रचार प्रभावित है हमारे ऊपर। सब बाहर के प्रभाव छोड़ देने होंगे। उस निष्प्रभाव स्थिति में जो स्वयं में भीतर है उसका जागरण होता है। प्रभाव नहीं, क्योंकि प्रभाव तो बाह्य है। प्रभाव का अभाव, उसमें स्वयं का बोध अनुभव होता है।
आत्म-ज्ञान शास्त्र से नहीं, स्वयं से उत्पन्न होता है। आत्म-ज्ञान शब्द से नहीं, निःशब्द से उत्पन्न होता है। आत्म-ज्ञान विचार से नहीं, निर्विचार से उत्पन्न होता है। आत्म-ज्ञान विकल्पों के इकट्ठा करने से नहीं, निर्विकल्प समाधि में, समाधान में उत्पन्न होता है। इसलिए शास्त्र आत्म-ज्ञान नहीं देता, स्वयं का बोध ही, स्वयं के प्रति जागना ही आत्म-ज्ञान देता है। मैं समझता हूं मेरी बात समझ में आई होगी।

बहुत सुंदर प्रश्न पूछा है।
विचार-शून्य होकर स्मरण किसका करें? स्मरण करें तो विचार-शून्य कैसे
हो सकें?

शून्य होकर किसी का स्मरण नहीं करना है। स्मरण विचार ही है। स्मरण तो
हम चौबीस घंटे कर रहे हैं किसी न किसी का, इसलिए स्व का विस्मरण हो गया है। या तो हम धन का स्मरण कर रहे हैं, मित्रों का स्मरण कर रहे हैं। अगर मित्र और धन छूटे तो भगवान का स्मरण कर रहे हैं, लेकिन हम किसी न किसी के स्मरण से भरे हैं। इसलिए स्व का विस्मरण हो गया है। अगर समस्त पर का स्मरण छूट जाए तो स्व का स्मरण आ जाएगा। स्मरण किसी का करना नहीं है। स्मरण कर रहे हैं, यही दिक्कत है। स्मरण छोड़ देना है समस्त का। सब्स्टीट्यूट नहीं करना है। दुकान का स्मरण करते थे तो उसे छोड़ा तो अरिहंत-अरिहंत का स्मरण करने लगे। वह सब्स्टीट्यूट हो गया। पहले भी किसी पर का स्मरण कर रहे थे, अब भी पर का स्मरण कर रहे हैं। समस्त पर के स्मरण के शून्य हो जाने पर स्व का जो विस्मरण हो गया है उसका स्मरण हो जाता है। स्मरण करना नहीं होता, स्मरण हो जाता है। कुछ दोहराना नहीं होता, कुछ दिख जाता है।
शून्य का अर्थ किसी का स्मरण नहीं, समस्त स्मरण का विसर्जन है। हमने अपने को खोया नहीं है, हमने केवल अपने को विस्मरण किया है। हम अपने को खो तो सकते ही नहीं। स्वरूप को खोया नहीं जा सकता, केवल विस्मरण किया है। और विस्मरण क्यों किया है? विस्मरण इसलिए किया है कि दूसरी बातों के स्मरण ने चित्त को भर दिया है। मैं दूसरी चीजों से भरा हुआ हूं। दूसरे शब्दों से, विचारों से भरा हुआ हूं। अगर वे सारे शब्द, सब विचार और सारा स्मरण विसर्जित हो जाए तो स्व का बोध उत्पन्न हो जाएगा। स्मरण नहीं करना है, विस्मरण करना है।
श्री रमण से किसी ने पूछा था आकर कि क्या सीखूं कि मुझे प्रभु उपलब्ध
हो जाए? श्री रमण ने कहाः सीखना नहीं है, अनलर्न करना है। सीखना नहीं है, भूलना है। बहुत स्मरण है, बही बाधा है। समस्त स्मरण छूट जाए, स्व-स्मरण जाग्रत हो जाता है।

किन्हीं ने पूछा हैः जब बुद्धि असफल हो जाती है तो क्या हम श्रद्धा का सहारा न लें।

श्रद्धा भी बुद्धि है। श्रद्धा बौद्धिक होती है। हम बड़ी मुश्किल में हैं दुनिया में। हम समझते हैं अश्रद्धा बौद्धिक होती है और श्रद्धा बौद्धिक नहीं होती। अश्रद्धा भी बौद्धिक होती है, श्रद्धा भी बौद्धिक

होती है। किससे श्रद्धा करते हैं? जो मानता है कि मैं ईश्वर को मानता हूं, वह किस चीज से मान रहा है ईश्वर को? बुद्धि से मान रहा है। जो कहता है, मैं ईश्वर को नहीं मानता, वह किससे नहीं मान रहा है? वह भी बुद्धि से नहीं मान रहा है। धार्मिक लोगों ने एक उलझाव पैदा कर दिया है। वे यह सोचते हैं कि श्रद्धा तो बौद्धिक नहीं है और अश्रद्धा बौद्धिक है। अश्रद्धा भी बौद्धिक है, श्रद्धा भी बौद्धिक है। अगर आपकी बुद्धि पूरी असफल हो जाए, आप भगवान को उपलब्ध हो जाएंगे। बुद्धि ही बाधा है। अगर आपकी बुद्धि बिल्कुल असफल हो जाए खोजने में और यह कह दे कि मेरी बुद्धि कुछ भी नहीं खोजती, तो न वह बुद्धि श्रद्धा करेगी, न अश्रद्धा; क्योंकि श्रद्धा भी खोज है, अश्रद्धा भी खोज है। जो यह कह रहा है, ईश्वर नहीं है, उसने भी कुछ खोज लिया। जो यह कह रहा है, ईश्वर है, उसने भी कुछ खोज लिया। दोनों की बुद्धि सफल हो गई।
अगर बुद्धि टोटल फेल्योर हो जाए तो आप सत्य को उपलब्ध हो जाएंगे। अगर बुद्धि यह कह दे कि मैं कुछ भी नहीं खोज पा रही, और बुद्धि पर से आस्था उठ जाए, और बुद्धि से आप बिल्कुल निराश हो जाएं, तो आपके भीतर प्रज्ञा का जागरण हो जाएगा। जब तक बुद्धि को आस्था बनी है--चाहे श्रद्धा में, चाहे अश्रद्धा में, तब तक प्रज्ञा का, तब तक इंट्यूशन का जागरण नहीं होगा। इंटेलिजेंस बिल्कुल असफल हो जाए और आपकी आस्था उस तरफ से बिल्कुल उठ जाए कि बुद्धि से कुछ भी न होगा, तो आपके भीतर एक नया द्वार खुल जाएगा जिसको इंट्यूशन कहते हैं, जिसको प्रज्ञा कहते हैं।
बुद्धि की असफलता बड़ा सौभाग्य है। बुद्धि असफल हो जाए, इससे बड़ी और कोई बात नहीं है।

एक अंतिम प्रश्न और है।
ईश्वर और आत्मा में क्या संबंध है? क्या आत्मा ही परमात्मा है?

मैं कोई उत्तर आपको इस संबंध में दूं तो गलत होगा। क्योंकि मैंने कहा
कि आत्मा और परमात्मा के संबंध में बाहर से कोई कुछ भी नहीं दे सकता है। अगर मैं खुद ही कोई उत्तर दूं तो मैं अपनी ही बात की गलती में चला जाऊंगा। मैं आपको नहीं कहता कि आत्मा क्या है और परमात्मा क्या है, मैं आपको इतना ही कहता हूं कि कैसे उन्हें जाना जा सकता है। आत्मा क्या है, यह कहना बिल्कुल संभव नहीं है। आज तक संभव नहीं हुआ है। किसी व्यक्ति ने इस जगत में यह नहीं कहा कि आत्मा क्या है। जो जागे हैं उस सत्य के प्रति उन्होंने यही बताया कि हम कैसे जागे हैं; क्या है, नहीं--उस क्या है के प्रति हम कैसे जागे हैं।
तो मैं आपको नहीं कहूंगा कि आत्मा क्या है। मैं तो यही कहूंगा कि कुछ
है जो अभी अज्ञात है और ज्ञात हो सकता है। और ज्ञात होने की विधि यह है कि उसके संबंध में अभी कोई विचार परिपक्व न करें, समस्त विचार छोड़ कर शून्य हों और देखें। मैं भी एक विचार आपको दे दूं, उससे कोई अर्थ न होगा। वह एक विचार और आपके मस्तिष्क में बैठ जाएगा। मैं तो कह रहा हूं, समस्त विचार छोड़ दें। तो मैं और एक एडीशन नहीं करूंगा। आत्मा के संबंध में सब विचार छोड़ दें, मौन हो जाएं, आपको दिखेगा क्या है। और उसी में आपको यह भी दिखेगा कि वही आत्मा समस्त में व्याप्त है या नहीं है। वही आत्मा अगर समस्त में व्याप्त दिखाई पड़े, तो अर्थ हुआ, परमात्मा है। जो एक के भीतर व्याप्त है, अगर वही चैतन्य, वैसा ही चैतन्य समग्र के भीतर व्याप्त है, तो उस टोटल कांशसनेस का नाम परमात्मा है। वह समस्त के भीतर जो व्याप्त चैतन्य है, उसका नाम परमात्मा है। समस्त के भीतर व्याप्त जो जड़ है, उसका नाम प्रकृति है। और प्रत्येक व्यक्ति जड़ और प्रकृति, प्रकृति और परमात्मा का जोड़ है। प्रत्येक के भीतर शरीर है और प्रत्येक के भीतर अशरीरी चैतन्य है। मेरे लिए रास्ता है कि मैं शरीर के पार जो अशरीर चैतन्य है उसको अनुभव कर लूं। उसका अनुभव मुझे जगत-सत्य का अनुभव दे देगा।
मैं कुछ भी नहीं कहूंगा कि परमात्मा है या नहीं, आत्मा कैसा है। मैं इतना ही कहूंगा कि जो भी है उसे जानने का उपाय है। उपाय बताया जा सकता है,

उसे जानने की विधि बतलाई जा सकती है। जैसा मैं निरंतर कहता हूं, अंधे को प्रकाश नहीं बताया जा सकता, आंख सुधारने का उपाय बताया जा सकता है। अंधे को प्रकाश के संबंध में कोई सिद्धांत नहीं समझाया जा सकता, लेकिन आंख के उपचार की व्यवस्था बताई जा सकती है। आंख सुधर जाए, प्रकाश दिखेगा। प्रकाश को देखना पड़ेगा, आंख सुधर सकती है। हमारे भीतर अंतःप्रज्ञा जाग्रत हो सकती है, उससे जो दर्शन होगा वह जगत-सत्य के संबंध में कुछ हमको दिखा देगा। उसके पूर्व कोई दूसरा उसे दिखाने में न समर्थ है... और अगर कोई दावा करता हो, तो दावा गलत है।
... और जब हम पूछते हैं कि संन्यासी का क्या मार्ग हो?
हमारा मतलब यह है कि हम संन्यासी नहीं हैं। सामान्य घर-गृहस्थी में हैं। हम क्या करें? यही मतलब है न?
हम कहीं हों, मार्ग हो सकता है, क्योंकि आत्मा प्रतिक्षण उपस्थित तो
है मेरे भीतर। मैं बाहर घूम रहा हूं और भीतर जाने का मार्ग नहीं पाता हूं। निरंतर यह सुनने पर कि भीतर जाना है। मेरा सारा घूमना बाहर ही होता है और भीतर जाना नहीं हो पाता। तो असल में कुल इतना समझ लेना है कि बाहर मैं किन वजहों से घूम रहा हूं, कौन से कारण मुझे बाहर घुमा रहे हैं? अगर वे कारण मेरे हाथ छुट जाए तो मैं भीतर पहुंच जाऊंगा।

प्रश्नः निर्विचार कितनी देर तक रहा जाए, क्या चौबीस घंटे तक रहा जाए?

नहीं, चौबीस घंटे की बात नहीं है। अगर दस मिनिट भी परिपूर्ण निर्विचार में जा सकते हैं आप तो चौबीस घंटे धीरे-धीरे आप पाएंगे सब काम करते हुए--पड़े रहने की कोई जरूरत नहीं है--सब काम करते हुए। बात करते हुए, बोलते हुए, भीतर एक शून्य स्थापित बना रहेगा। एक बारगी थोड़ा सा समय तोड़कर चौबीस घंटे में आधा घंटा पंद्रह मिनट। उस पंद्रह मिनट में प्राथमिक रूप से क्रियाएं छोड़ कर शून्य में जाना पड़ता है, पहले पहले, और जब एक दफा शून्य का अनुभव हो गया तब तो क्रियाओं के बीच भी शून्य में आ जा सकता है। चौबीस घंटे पड़ा नहीं रहना है, आधा घंटा जरूर पड़ा रहना है शुरुआत में। वह इसलिए कि काम में अगर हम बहुत व्यस्त हैं तो विचार को छोड़ना कठिन होगा शुरू में। विचार छोड़ना ही कठिन है। फिर काम में और व्यस्त थे और काम के कारण ही हममें विचार चलते हैं। तो छोड़ना कठिन होता है।
इसलिए शुरुआत में आधा घंटा निष्क्रिय ध्यान करना है, कोई क्रिया नहीं
कर रहे हैं हम, चुपचाप पड़े हुए हैं, सिर्फ विचार को शून्य का भाव कर रहे है, सिर्फ विचार को शून्य में ले जाने का भाव कर रहे हैं। जब आधा घंटा निष्क्रिय ध्यान आ जाए, निष्क्रिय शून्यता आ जाए फिर सक्रिय ध्यान करना चाहिए। फिर क्रिया कर रहे हैं और साथ में चित्त शून्य कर कहे हैं, इसका उपाय भी कर रहे हैं। चल रहे हैं साथ-साथ चल भी रहे हैं और चित्त शून्य रहे, इसका भी भाव कर रहे हैं। खाना खा रहे हैं, खाना भी खा रहे हैं और चित्त शून्य में है, इसका भी भाव कर रहे है। फिर धीरे-धीरे वह जो निष्क्रियता हमें उपलब्ध हुआ उसका उपयोग सक्रियता में करना होता है। और जब वह सक्रिय रूप से भी पूरा हो जाए तो जानना चाहिए वह स्थित हो गया है। जब वह चौबीस घंटे सतत बना रहे, उठते बैठते, सोते जागते स्थिति बनी रहे तब जानना चाहिए वह सक्रिय ध्यान उपलब्ध हो गया। अगर सक्रिय ध्यान उपलब्ध हो जाए तो जीवन में अदभुत आनंद का अनुभव होगा।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

वह सक्रिय ध्यान का प्रयोग है जागरूकता। समस्त क्रियाओं के प्रति, चित्त की क्रियाओं के प्रति शून्य में भी जाने का माध्यम भी जागरूकता ही है, जैसे आधा घंटा रहेंगे तो आप क्या करेंगे, उस आधा घंटा में चित्त में आपके जो भी विचार चल रहे हों उनके प्रति केवल जागरूक होना है, केवल साक्षी होना है। और क्या करिएगा? साक्षी भर हो जाना है, देखते रहे चुपचाप वह चले। लेकिन हमारे देखने में बाधा आती है, हम तल्लीन हो जाते हैं, साक्षी नहीं रह

पाते। हम कब उन्हीं विचारों में एक हो गए उसका पता नहीं रहता है। यह बोध मिट जाता है, मूर्च्छा आ जाती है। एक विचार आया मन में, कोई स्मृति आई। हम देखने वाले नहीं रह जाते, उसी विचार और उस प्रवाह के हिस्से हो--यह मूर्च्छा है।
और इसके विपरीत जागरूकता है कि हम उसके हिस्से नहीं हो रहे। विचार आ रहा है, हम ऐसे ही देख रहे हैं जैसे हम पर्दे पर फिल्म देखते हैं। हम चुपचाप देख रहे हैं। हम कोई उसके साथ आइडेंटिटी नहीं कर रहे हैं अपने को, अपने को जोड़ नहीं रहे हैं। हम खड़े हैं, और हम देख रहे हैं। थोड़े दिन के अयास से यह भाव होना आसान हो जाएगा। अभी तो एकदम से दिक्कत होती है क्योंकि क्षण भर हम खड़े रहेंगे, फिर हमको होश आएगा कि अरे, हम उसी में संलग्न हो गए! तो निरंतर इसका उपयोग करने से आधा घंटा रोज--कुछ ही दिनों में आधा घंटे में तो स्पष्ट रूप से आप जागरूक रह पाएंगे। और जब आधा घंटे में जागरूक रह पा सकते हैं तो फिर उसका विकसित प्रयोग भी है। धीरे-धीरे क्रियाओं में भी और तब क्रियाओं में भी जागरूकता आ जाए।
गांधी जी के पास शुरू-शुरू में विनोबा जी गए थे। विनोबा जी में अपनी
एक बात है कि वह किसी भी काम को परिपूर्ण कुशलता से करना--इनको हरेक बात में वैसा ध्यान रहता है। जो भी काम करना है उसकी पूरी कुशलता पानी है। जब उन्होंने चरखा कातना शुरू किया तो उन्होंने इतनी अच्छी पोनी बनाई कि गांधी जी दंग रह गए। उन्होंने कहा कि इससे अच्छा पोनी बनाने वाला हमारे पास कोई आदमी नहीं है। फिर उन्होंने खर्चे में भी इतने सुधार किए कि गांधी जी दंग रह गए। फिर वह सूत भी इतना महीन कातने लगे कि गांधी जी ने कहा कि यह सूत कातने का आचार्य है। यह सब होने के बावजूद विनोबा जी ने गांधी से पूछा कि मैंने सबसे अच्छी व्यवस्था कर ली, चर्खा मेरा आपसे बेहतर हो गया है। मेरी पोनी आपसे अच्छी हो गई है। मेरी कातने में कुशलता आ गई है लेकिन मेरा अपना धागा टूट क्यों जाता है? और आपका धागा खराब पोनी में भी नहीं टूटता। गांधी जी ने कहाः उसका संबंध चरखे से नहीं, उसका संबंध चित्त से है। तुम स्मरण रखना, जब तुम मूर्च्छित हो जाओगे तभी धागा टूट जाएगा। धागे को चला रहे हो, चित्त कहीं और चला गया, धागा टूट जाएगा। गांधी जी ने कहाः मैं अमूर्च्छित कातता हूं। जब कात रहा हूं तक चित्त में और कोई विचार ही नहीं है, बस कातने की क्रिया भर के प्रति जागरूकता रह गई है और कात रहा हूं। न चित्त कुछ सोच रहा है, न विचार कर रहा है, न कोई स्मृति आ रही है, न कोई भविष्य की और कल्पना बन रही है। बस चरखे के उस कातते धागे कि अतिरिक्त मेरे चित्त में उस समय कुछ भी नहीं है। सिर्फ धागा कत रहा है और मैं हूं। धागा नीचे जा रहा है और मैं हूं, धागा ऊपर जा रहा है और मैं हूं। मैं केवल एक देखने वाला मात्र रह गया हूं और धागे की क्रिया चल रही है। क्रिया है और भीतर जागरूकता है इसलिए धागा नहीं टूटता। गांधी जी इसीलिए बाद मग अपने चरखे कातने की प्रार्थना कहने लगे, ध्यान कहने लगे। वह कहने लगे मेरा ध्यान तो चरखा कातने में ही हो जाता है।
अगर हम बुद्ध महावीर को समझें तो हम हैरान हो जाएंगे कि चौबीस घंटे की क्रियाएं ध्यान में उठती हैं। वे जो भी कह रहे हैं वह ध्यान ही होता है। क्रिया कर रहे हैं, चित्त परिपूर्ण शांत है और जागरूक है। हमारा जीवन इस तरह के ध्यान के बिल्कुल विपरीत है। हम चौबीस घंटे मूर्च्छा की तलाश कर रहे हैं। चौबीस घंटे हम किसी तरह का इंटाक्सिकेंट खोज रहे हैं--चाहे सिनेमा खोजते हों, चाहे गीत सुनते हों वहां खोजते हों, चाहे ग्रंथ पढ़ते हों, वहां खोजते हों, चाहे मंदिर में जाकर भजन कीर्तन करते हो वहां खोजते हों। हम चौबीस घंटे यह खोज रहे हैं कि किसी तरह मैं अपने को भूल जाऊं। और। सी को सुख भी कहते हैं। जहां-जहां हम अपने को भूल जाते हैं, कहते हैं बड़ा सुख आया।
असल में हमें अपना खुद का स्मरण बहुत दुखद है और हमारा होगा, हमारा एक्झिस्टेंस ही दुख है। हम सब पच्चीस रास्ते से खोज रहे हैं। वह रास्ते फिर चाहे कोई भी हों। जहां-जहां हमको थोड़ी देर का तल्लीनता आ जानी है, हम अपने को भूल जाते हैं। वहीं हमको सुख मालूम होता है। ध्यान तो हमारा बिल्कुल विपरीत। ध्यान का कहना है, जहां-जहां हमें तल्लीनता है, वहीं-वहीं

हम मूर्च्छित हैं। किसी में तल्लीन नहीं होता है, समस्त के प्रति जागरूक होना है।

प्रश्नः कार्य में भी तल्लीन नहीं होना है।

अगर आप ठीक से समझिएगा, किसी कार्य में अगर आप पूरे तल्लीन हैं, पूरे तल्लीन हैं--तल्लीनता बिल्कुल दूसरी बात है और जागरूकता बिल्कुल दूसरी बात है। अगर किसी कार्य में आप पूरे तल्लीन हैं तो आप शेष जगत के प्रति एकदम मूर्च्छित हो जाएंगे।
एक आदमी के मकान में आग लग गई है और वह भागा चला जा रहा है कोई उसको रास्ते में नमस्कार करता है, उसे दिखाई नहीं पड़ता है, उसको सुनाई नहीं पड़ता है। असल में वह एक बात में तल्लीन है कि उसके मकान में आग लग गई है, वह भागा जा रहा है। अभी उसका चित्त सब जगह अनुपस्थित है, वहीं उपस्थित है और जागरूकता बिल्कुल दूसरी चीज है। जागरूकता में चित्त सब जगह समानरूपेण उपस्थित है चित्त किसी एक केंद्र पर जाग कर सब पर नहीं खो गया है चित्त केवल जाग रहा है, चाहे कोई भी केंद्र हो।
तल्लीनता का हम इसलिए मूल्य मानते हैं जीवन में कि हमारी गैर-तल्लीनता कार्य में अकुशलता बन जाती है। जैसे एक आदमी कोई काम कर रहा है और चित्त उसका और कहीं लगा हुआ है। इसको हम कहते हैं, यह तल्लीन नहीं है। असल में यह और कहीं तल्लीन है। अगर हम ठीक से समझें, इसको यह नहीं कहना चाहिए कि तल्लीन नहीं है, असल में यह अन्य किसी जगह पर तल्लीन है। तल्लीन तो यह है, यहां तल्लीन नहीं है। इसलिए हम कहते हैं, काम में तल्लीन हो जाओ। तो एक तो यह आदमी है कि काम कुछ कर रहा है और कही तल्लीन और है। दूसरा आदमी वह है कि वहां वह काम कर रहा है वहीं तल्लीन है। वह और शेष जगह अनुपस्थित है। और तीसरा आदमी वह है जो केवल जागरूक है और काम कर रहा है। वह तल्लीन कहीं भी नहीं है।
ऐसा आदमी जो किसी काम में तल्लीन नहीं है, केवल जागरूक है, स्वयं में तल्लीन होगा। अगर वह कहीं भी तल्लीन नहीं और सिर्फ जागरूक है जगत के प्रति तो स्वयं में तल्लीन होगा। अगर स्वयं में तल्लीनता आनंद है। पर में तल्लीनता सुख है और स्वयं में तल्लीनता आनंद है। पर मग तल्लीनता से हम स्वयं को भूल जाते हैं। और समस्त पर के प्रति तल्लीनता टूट जाए, पर के प्रति केवल अवेयरनेस रह जाए, केवल होश मात्र रह जाए तो उस स्थिति में वह जो तल्लीनता होने की हमारी क्षमता है--क्षमता हमसे जरूर है--वह जो तल्लीन होने की क्षमता है वह कहीं और में तल्लीन अगर हमने नहीं होने दिया तो क्षमता स्वयं में तल्लीन हो जाएगी। वह व्यक्ति स्वस्थ होगा, वह स्वयं में स्थित होगा। वह अपने में खड़ा हो जाएगा। वह कहीं और में डूबा हुआ है, वह स्वयं में डूब जाएगा। ऐसा व्यक्ति समस्त कार्य करेगा क्योंकि वह जागरूक तो है, मूर्च्छित नहीं है। उसकी क्रियाएं पूर्ण कुशल होंगी क्योंकि वह किसी भी कार्य को परिपूर्ण जागरूकता से करेगा। लेकिन साथ-साथ एक अदभुत बात होगी। प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक क्रिया को करते हुए भी अपने से च्यूत नहीं होगा, अपने से डिगेगा नहीं, अपने में खड़ा रहेगा, सुव्यवस्थित होगा। ऐसे व्यक्ति को गीता ने स्थित प्रज्ञा कहा है। जिसकी प्रज्ञा बिल्कुल स्थित हो गई है--शब्द बड़ा बढ़िया उन्होंने चुना है। जिसकी प्रज्ञा अपने में बिल्कुल ठहर गई है जिसका ज्ञान बिल्कुल अपने में ठहर गया है।
तो ज्ञान हमारे स्वयं में ठहर जाए, उसके लिए शून्यता का और जागरूकता
का प्रयोग है। शून्यता और जागरूकता में पहले भेद नहीं है। जागरूकता प्रक्रिया है परिणाम शून्यता है। जागरूकता होने का हम प्रयोग करेंगे, परिणाम में शून्यता उपलब्ध होगी। पहले वह निष्क्रिय होगी, फिर उसे सक्रिय करना होगा। और जब वह अखंड चौबीस घंटे जो जाए तो ऐसा आदमी संन्यास में है। वह कहां रहता है इससे मेरे लिए कोई संबंध नहीं है। वह कैसे रहता है इससे कोई संबंध नहीं है।

प्रश्नः क्या सुबह आधा घंटा करना अच्छा रहना?

बहुत अच्छा है रात्रि को, जब शांति हो जाए, उस वक्त आधा घंटा बैठ कर प्रयोग करना; और अगर नहीं तो सुबह अच्छा है। अगर उस वक्त थक जाते हो ज्यादा दिन भर के काम काज के बाद और बैठा रहना या आधा घंटा प्रयोग करना संभव न हो तो फिर सुबह जब उठें तो बिस्तर पर ही बैठ जाए, उस वक्त आधा घंटा करें। या जो आपको ठीक लगे।

प्रश्नः किसी खास स्थिति में बैठें या आराम से?

नहीं-नहीं, जितने आराम से बैठे उतना। कोई स्थिति की बात नहीं। आराम भी महत्वपूर्ण है। यानी अन्य किसी चीज को महत्व देने की जरूरत नहीं है, महत्व उसी प्रक्रिया को देने का है जो आपको सहज मालूम हो। लेट कर सुखद मालूम हो लेट कर बैठ सकते हैं। क्यों चाहे आप लेटें और चाहे आप बैठे और चाहे आप खड़े हों, आत्मा एक ही स्थिति में हैं। आपके लेटने, उठने, बैठने से कोई अंतर नहीं पड़ने वाला है। बस वह इतना उपयोग है कि आपकी स्थिति शरीर की ऐसी हो कि वही एक अड़चन का कारण बने। इतना ध्यान रख कर कभी भी उस प्रयोग को करें। थोड़े ही दिन में बहुत अदभुत अनुभव होंगे।

प्रश्नः अगर कोई विचार में दिक्कत आई तो?

नहीं, उसमें कोई दिक्कत नहीं है। प्रयोग ही न करें, वही एक दिक्कत है। मेरे देखने में, जानने में एक ही दिक्कत है कि प्रयोग ही न करें। बाकी कोई दिक्कत नहीं है।

प्रश्नः अगर विचार आए तो उसे हटा दे?

हटाएंगे कैसे आप? हमको यही कठिनाई है। जो इस जगत में सारे लोगों को दिक्कत है, निर्विचार होना समझ में आ जाता है, पर वह हमको भाव यह लगता है कि निर्विचार का मतलब हटा देना। इटाइएगा। कैसे? हटाना नहीं है, जागरूक होना है। विचार आया, उसको देखना, उसके द्रष्टा मात्र रह जाना। आने दे, हटाने का भाव ही छोड़े। हटाना भी उसमें उलझ जाना है। न हटाना है, न कुछ।
बुद्ध के जीवन में एक उल्लेख है, शायद पिछली बार उसकी चर्चा किया था।
वह एक जंगल से गुजरते थे। उनका एक भिक्षु आनंद उनके साथ था। वह एक वृक्ष के नीचे रुक गए। उन्हें प्यास लगी और उन्होंने आनंद को कहा कि जाकर पास से पानी ले आ। तो आनंद बोला कि यह मार्ग मेरा परिचित है। आगे एक छोटा सा पहाड़ी नाला है फलांग दो फलांग पर, उस पर से पानी ले आऊं? और या फिर पीछे तीन मील लौटने से नदी है, जहां से हम होकर आए हैं, उससे पानी ले आऊं। बुद्ध ने कहा, उस नाले से ही पानी ले आ। वह नाले पर गया, लेकिन जब वह नाले पर पहुंचा तो उसके आगे ही पांच-सात बैलगाड़ियां उस नाले से निकल गई है। वह एकदम गंदा और कचरे से भर गया है और सार पत्ते दबे हुए, सड़े हुए ऊपर फैल गए हैं। छोटा सा नाला था, वह पानी पीने योग्य नहीं है, ऐसा मानकर वह वापस लौट आया। फिर बुद्ध से कहा कि वह पानी तो पीने योग्य नहीं है, मैं वापस पीछे जाता हूं। बुद्ध ने कहाः इस दोपहरी में पीछे मत जाओ तुम उसी पानी को ले आओ। बुद्ध की बात भी टाल नहीं सका, फिर वहीं गया लेकिन उसका फिर वहां साहस नहीं हुआ कि इस पानी को मैं कैसे ले जाऊं और उनके लिए पीने को पानी कैसे दूं? फिर वापस लौट। मुश्किल यह थी, बीच में वह उसी रास्ते में था, वह रुके थे। वह फिर वापस लौटा, उसने कहाः क्षमा करें, पानी लाने का साहस मेरा नहीं है।
बुद्ध ने कहाः तू मान उसी पानी को ले आ। वह बड़ी अड़चन में पड़ गया। वह जानता था, फिर उसे वापस लौटने का बहुत आग्रह किया। बुद्ध ने कहाः लाना हो तो उसी को ला, अन्यथा मत ला। उसे मजबूर होकर वहीं जाना पड़ा। वहां जाकर वह देख कर हैरान हुआ। वह तो पत्ते बह गए थे और कचरा नीचे बैठ गया था वह पानी को भर लाया, वह बड़ा हैरान हुआ। उसने जाकर बुद्ध को कहा कि बड़ा अदभुत अनुभव हुआ। वह पत्ते तो सब बह गए, कचरा नीचे बैठ गया, पानी तो बिल्कुल निर्मल हो

गया। बुद्ध ने कहाः मन को शांत करने का सूत्र भी यही है। तुम किनारे बैठ जाओ और जो विचार बहते हों बहने दो। जो विचार बैठ जाए बैठ जाने दो। तुम बिल्कुल किनारे बैठे रहो, तुम छेड़छाड़ मत करो। और अगर तुम किनारे बैठे देख सकते हो तो तुम थोड़ी देर में पाओगे कि सब पत्ते बह गए और सब कचरा नीचे बैठ गया और अगर तुम कूद पड़े धारा में उसको शांत करने के लिए, फिर वह शांत होने को नहीं और दबे पत्ते उघड़ आएंगे शांत होना मुश्किल हो जाएगा।
चित्त के प्रति तटस्थ जागरूक होने का प्रयोग भर सार्थक है। कुछ करना नहीं है लेकिन हमारे सारे उपदेश सुनकर हमको ऐसा लगता है कि कुछ करना है। करना भ्रामक हो जाता है। कुछ करना नहीं है। और करने का भ्रम ही हमारा असली भ्रम है। असल में हम केवल द्रष्टा मात्र हैं, इसे हम केवल देख सकते हैं। और इसे हम केवल देखने का उपयोग कर लें थोड़ा सा तो हम अचानक पाएंगे कि चित्त तो गया, बह गया। पर वह हम हटाने में लग जाते हैं। हटाने में फिर कुछ रास्ता नहीं बनता। हटाने में आप उलझ जाते हैं। और जितने आप जोर से हाथ मारते हैं, उतने जोर से उलझ जाते हैं। और तब आप फिर पच्चीस एक्सप्लेनेशंस खोज लेते हैं कि अपने पुराने पाप कर्म होंगे, फलां होगा ढिकां होगा, इससे नहीं हो रहा हैं। ये सब पच्चीस बातें खोज लेते हैं। तो यह सब उस ना समझी को जा आप कर रहे हैं, छिपाने के उपाय से ज्यादा नहीं हैं। यह कोई एक्सप्लेनेशन माने के नहीं हैं। जैसे एक घड़ी को सुधारना न जानता हो और कोई आदमी सुधारने बैठ जाए तो सोचने लगे कि पुराने कर्मों का फल है। घड़ी तो बिगड़ी चली जाती है। अभी कर्मों का उदय नहीं कि घड़ी ठीक हो। और कुल बात इतनी है कि वह टेकनीक को नहीं समझ रहा है कि घड़ी ठीक हो जाएं।
ध्यान बिल्कुल टेक्नीक की बात है। कुछ करने की बात नहीं है समझ लेना
की बात है देखें थोड़े दिन प्रयोग करके। अधैर्य हमारा इतना ज्यादा है कि हम प्रयोग नहीं कर पते। तो थोड़े रखें, बहुत अदभुत होगा।

प्रश्नः प्राणायाम क्या इसके लिए कुछ सहायक हो सकता है?

नहीं, मेरे मानने में तो कुछ सहायक नहीं है और इसीलिए मैं हरेक चीज को इनकार कर देता हूं कि वह सहारे अगर मैं थोड़े भी मैं कहूं तो आप थोड़े ही दिन में पाएंगे कि यह तो गौण हो गया है, वह सहार की ही आप फिकर कर रहे हैं और वही काम कर रहा है। कोई सहायक नहीं है। यानी निपट मैं, एक छोटी सी बात, बात ही आपकी दृष्टि में रखे रहना चाहता हूं। कोई भी दूसरी चीज को बीच में नहीं आने देना है। कोई सहायक नहीं है। और या तो फिर जीवन का हर काम सहायक है-- खाने, पीने, सोने उठने, बैठने से लेकर सब। प्राणायाम स्वस्थ के लिए सहायक होता है। स्वास्थ्य के लिए उपयोगी होगा। पर वह भी बहुत सोच समझ कर करने जैसा है, नहीं तो अस्वास्थ्य लाने में उपयोगी हो जाता है।
जीवन और शरीर के बाबत तो मेरी धारणा यह है कि वह बहुत सहज, निसर्ग, जीने देना चाहिए। जितना सहज उसको निर्सगतः जीने दें जितना उसमें कुछ उल्टा सीधा न करें उतना अच्छा है। प्राणायाम का उतना मूल्य नहीं है जितना स्वच्छ वायु का शरीर में पहुंच जाने का मूल्य है। वह कभी घंटे भर के लिए खाली स्वच्छ स्थान पर बैठकर धीमे से गहरी श्वास ले लें तो शरीर को लाभ पहुंचाएगा। और श्वास की जो रिदम है वह मन को शांत करने मग सहयोगी हो जाती है। असल में सब रिदम शांत लाती है किसी तरह की रिदम हो, किसी तरह की गतिबद्धता हो वह शांति लाती है।
वहां बर्मा में या कुछ और मुल्कों में वह ध्यान के लिए अनिवार्य मानते हैं, श्वास में रिदम पैदा करना। आधा घंटे को बैठ जाए और श्वास के आने जाने को देखते रहे। श्वास भीतर गई तो स्मरणपूर्वक भीतर जाने दें, बाहर गई तो स्मरणपूर्वक बाहर जाने दें। फिर भीतर गई तो स्मरणपूर्वक। वह जागरूक का प्रयोग करें। तो उसमें दोहरे फायदे होंगे। श्वास थोड़ी देर में रिदम पकड़ लेगी। रिदम का परिणाम स्वाथ्य पर अच्छा होगा। और दूसरा, वह जो मैं जागरूकता कह रहा हूं वह श्वास के मध्यम से जागरूकता विकसित होने लगेगी। और वह जागरूकता जो श्वास के संबंध में विकसित हो गए, उसी जागरूकता का प्रयाग मन के संबंध में, विचार के संबंध में किया जा सकता है।

और सच तो यह है कि अगर आप श्वास के प्रति भी जागरूक हो जाए तो भी चित्त में विचार शून्य हो जाएंगे। श्वास और विचार बंधे हुए हैं। अगर पांच मिनट बैठ कर आप श्वास को देखते रहे--श्वास-प्रश्वास को, आप अचानक पाएंगे, मन शून्य हो गया आखिर है किसी भी चीज के प्रति जागरूकता का प्रयोग करें तो चित्त शून्य हो जाएगा। अगर एक हाथ को यहां तक ले जाएं और होश से देखते रहे तो आप पाएंगे कि चित्त शून्य हो गया। अगर आप रास्ते पर चलें और कदम-कदम पर जागरूकता रखें, बायां पैर उठा और नीचे गया, दायां पैर उठा और नीचे गया पूरा होश रखें तो आप एक पांच मिनट बाद पाएंगे कि आप चल रहे हैं और चित्त शून्य हो गया है। जहां भी जागरूकता का प्रयोग कर लें, वह चित्त शून्य होगा। मूर्च्छा चित्त है जागरूकता चित्त शून्यता है।
सहयोगी किसी बात को न मानें। नहीं तो धीरे-धीरे धर्म के अदभुत परिणाम
हो गए हैं जगत में, वे सहयोगी बातें बताने की वजह से हो गए हैं। और तब धीरे- धीरे ऐसा होता है कि वह सहयोगी बातें हमारे लिए इतनी महत्वपूर्ण हो जाती है। तो मैंने बिल्कुल नियमित रूप से उनकी बात करना बंद कर दी है। थोड़ा बहुत सहयोग जरूर मिल सकता है। बाकी मैं उसकी बात बंद किया है। नहीं तो लोग मुझसे पूछते हैं, आहार कौन सा सहयोगी होगा? कपड़े कौन से सहयोगी होंगे? जरूर कुछ सहयोग हो सकता है। लेकिन अगर उनकी बातें इतनी की गई है कि कुछ लोग जो जिंदगी भर आहार ठीक करने में व्यय कर देते हैं। कुछ लोग हैं जो जिंदगी में कपड़े कैसे पहनना है, इसमें व्यय कर देते हैं।
जब जैसे जैन हैं, इन्होंने चुकता पच्चीस सौ वर्ष आहार ठीक करने में व्यय किए। चुकता ढ़ाई हजार वर्ष का इनका इतिहास आहार शुद्धि का इतिहास है। उसने आत्मा-वात्मा का कोई संबंध नहीं रहा है। वह एक बहुत गौ बिंदु था जिससे थोड़ा सहयोग मिल कसता था। लेकिन वह इतना ज्यादा आउट आफ प्रपोर्शन महत्वपूर्ण हो गया कि वह किसने बनाया और कैसे बनाया और किसने छुआ और किसने नहीं छुआ, वह इतनी महत्वपूर्ण बात हो गई कि हमारा साधु करीब-करीब अपने जीवन का अधिकतम हिस्सा खाने की शोध में व्यय करता है, आत्मा की शोध में नहीं। वह सारे अनुपात से ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया। वैसा ही प्राणायाम और दूसरी चीजें--जो कुछ संप्रदायों में अतिशय महत्वपूर्ण हो गई और तब यह हो गया कि कुछ साधु बेचारे दिन रात व्यायाम करने में व्यर्थ करते हैं, आत्मा की शोध में नहीं। और हमारा चित्त इतना ज्यादा डिसेप्टिव है, इतना ज्यादा वंचक है कि अगर उसे कोई भी चीज पकड़ा दी जाए तो वह मूल पर जाने की बजाय--वह तो जाना नहीं चाहता, मूल पर जाने में उसकी मृत्यु है। जो हमारा माइंड है, वह पूरा बचना चाहता है कि कहीं ध्यान में न चला जाए। तो कोई भी बचने का उसको अगर थोड़ा रास्ता मिल जाए, मूल से हटने का, तो तत्काल उसको पकड़ लेता है। सोचता है, पहले इसको पूरा कर लूं तब तो असली बात करेंगे। और जब यह पूरी कभी होंगी नहीं, असली बात होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठेगा।
इसलिए मैंने सख्ती से यह तय किया कि कोई सहयोगी नहीं। बात इतनी ही करनी तो इतनी ही बात करनी है। इतना जरूर मेरा अनुभव कि अगर इसका प्रयोग जारी किया तो जो चीजें सहयोगी हैं, धीरे-धीरे वे अपने आप आती जाएंगी। अगर इसका ठीक से प्रयोग किया तो थोड़े दिन में आपको पता चलेगा कि कि श्वास लेने का आपका ढंग बदल गया। थोड़े दिन में आपको पता चलेगा, आपका सोने का ढंग बदल गया। थोड़े दिन में आपको पता चलेगा, आपके भोजन का ढंग बदल गया। यह आपको अचानक पता चलेगा क्योंकि चित्त जैसे शांत होगा चित्त की अशांति में जो जो चीजें संबंधित थीं, वे विलीन होने लगी।
जैसे हमारे चित्त की अशांति से हमारा आहार संबंधित है। जितना चित्त अशांति है उतना मादक, उत्तेजक आहार प्रिय होता है। हम सोचते हैं, यह प्रिय होना कोई गलती की बात नहीं है। इसमें चित्त की अशांति के साथ मादक और उत्तेजक आहार प्रिय होगा। और अगर चित्त को बिना बदले कोई आहार को बदलेगा तो बड़ा त्याग मालूम पड़ेगा कि भारी कष्ट कर रहे हैं, बड़ा त्याग कर रहे हैं। लेकिन अगर चित्त शांत हो जाए, आहार में एकदम परिवर्तन हो जाए, अपने से परिवर्तन हो जाएगा।
एक महिला मेरे पास, एक बंगाली महिला अभी आती रही, अविवाहित है। वह जो उनकी मां ने आकर बताया कि हमारे बंगालियों में अविवाहित लड़की मांस मछली

छोड़े तो अपशगुन समझते हैं। असल में विधवा मांस मछली छोड़ देती हैं इसलिए। उन्होंने आकर मुझसे कहा कि इसने मांस मछली खाना छोड़ दिया तो हमको तो बड़ी परेशानी हो गई, समाज में बड़ी बदनामी हो गई। तो आपसे हम प्रार्थना करने आए हैं कि इसको कह दें कि यह खाए। तो मैंने उससे कहा, मैंने तो कभी उसको रोका नहीं कि वह न खाए। इसलिए मैं कोई कहने वाला नहीं हूं कि वह खाए। वह ध्यान करने आती है। ध्यान का यह परिणाम होगा। उस लड़की को मैंने पूछा कि तुमने यह बंद क्या किया? उसने कहा कि बंद करने का कोई सवाल नहीं है। मुझे आश्चर्य है कि मैं इतने दिनों तक खाई कैसे? जैसे-जैसे मन शांत हुआ है वह मुझे बिल्कुल फिजूल सी लगने लगी। इसको कैसे खाऊं, यह सवाल है। इसको खाना नहीं खाने का तो प्रश्न ही नहीं है। सभी भीड़ को घटनाएं घटी जिन लोगों ने ध्यान का थोड़ा सा प्रयोग किया उनके आचरण में व्यवहार में, पच्चीसों बातों में अंतर पड़ना शुरू हो गया। हमारी श्वास जो है, चित्त की अशांति के कारण बार-बार गैर रिदमिक हो जाती है। अनुभव किया होगा, क्रोध में श्वास रिदम टूट जाएगा। तीव्र कामवासना में श्वास का रिदम टूट जाएगा। किसी भी उत्तेजना में श्वास का रिदम टूट जाएगा। श्वास कंपती हुई, झटके से लंबी और छोटी चलने लगेगी। उसमें जो गतिबद्धता है लयबद्धता है वह विलीन हो जाएगी। वह डिसहार्मोनियस हो जाएगी। तो चौबीस घंटे में हम इतनी बार उत्तेजित होते हैं कि श्वास कई बार डिसहार्मोनियम होकर शरीर को नुकसान पहुंचाती है। उसके प्रतिकार के रूप में प्राणायाम है कि श्वास को हम लयबद्धता दे दें। नहीं, इस बीमारी के लिए वह प्रतिकार है। चित्त शांत हो जाए तो यह बीमारी नहीं होती। उसके प्रणाम करने का कोई सवाल नहीं उठता। बीमार होते हैं इसलिए स्वास्थ्य के लिए औषधि लेनी पड़ती है और अगर हम स्वस्थ हो जाएं तो औषधि व्यर्थ हो जाती है। मूल बात को ही पकड़ें ध्यान में और उसके ही प्रयोग को जारी रखें। धीरे-धीरे जो गौण हैं वे अपने आप बीतने लगेंगे और जो सहयोगी हैं वे दिखाई पड़ने लगेंगे, और उनका काम शुरू हो जाएगा। और जो सहयोगी हों उन पर पहले चिंतन करेगा, वह उन पर नहीं पहुंच पाएगा।
तो मेरी पूरी एंफेसिस जो है, जान कर ही आपको कोई और सहयोग की बात नहीं करता। लेकिन वह उतना बड़ा प्रपंच है सहयोग का कि वह उसके धुएं में मूल बात कहां खो जाएगी, पता नहीं। इतने ग्रंथ हैं, मैं तो हैरान हो गया हूं। जैन दर्शन पर सैकड़ों अभी किताबें लिखी गई हैं, उनमें ध्यान पर एक अध्याय भी है? मैं हैरान हो गया कि दर्शन और धर्म पर लिखी गई किताबें हैं, उनमें ध्यान का एक अध्याय नहीं। ऐसी किताबें मैंने देखीं कि हजार पृष्ठ की किताब है और ध्यान पर दो पन्ने कहीं एक जगह लिखे हुए हैं। बाकी ये सब सहायक हैं जिनका इतना विस्तार हो गया है, जिन पर इतना ज्यादा वाद-विवाद, इतना उपद्रव है और वह एक मौलिक बात है।

प्रश्नः ध्यान तपश्चर्या में कितनी सहयोगी है?

ध्यान ही तपश्चर्या है। आज मैंने सुबह या कल रात चर्चा भी किया। तपश्चर्या का हमको जो अर्थ पकड़ गया है, हमको मोटे अर्थ बहुत जल्दी पकड़े जाते हैं। जैसे, अभी मैं वहां गया, वहां इस पर बात हो रही थी--महावीर के उपवास, महावीर की तपश्चर्या महावीर ने साढ़े बारह वर्ष तक तपश्चर्या की। हमको लगता है तपश्चर्या की और मुझको लगता है तपश्चर्या हुई। और की और हुई में मैं बहुत फर्क कर लेता हूं।
एक साधु मेरे पास थे। वह मुझसे कहे कि मैं बड़े उपवास करता हूं। मैंने कहाः तुम जब तक उपवास करते हो, तब तक तपश्चर्या नहीं है। जब उपवास हो तब वह तपश्चर्या है। बोले, उपवास कैसे होगा? हम नहीं करेंगे तो होगा कैसे? हम करेंगे तभी तो होगा! मैंने उनसे कहा कि तुम ध्यान का थोड़ा प्रयोग करो तो अचानक कभी-कभी पाओगे कि उपवास हो गया। फिर बाद में, छह महीने बाद में वे मेरे पास गाए, हिंदू साधु थे, और उन्होंने कहाः जिंदगी मग पहली दफा एक उपवास हुआ। मैं सुबह पांच बजे उठ कर ध्यान करने बैठा, उस वक्त अंधेरा था। जब मैंने वापस आंख खोली तो मैं समझा, अभी सुबह नहीं हुआ क्या? पूछने पर पता

चला, रात हो गई है। पूरा दिन बीत गया, मुझे तो समय का पता है, न किसी और बात का। उस दिन भोजन नहीं हुआ। उन्होंने मुझे आकर कहाः एक उपवास मेरा हुआ। इसको मैं उपवास कहता हूं। हम जो करते हैं, वह अनाहार है, उपवास नहीं है। वह भोजन न करना है। यह उपवास है। उपवास का अर्थ है, उसके निकट वास। वह आत्मा के निकट वास है। उस वास में भोजन का स्मरण नहीं आएगा। तो, वह तो हुआ उपवास। और एक है अनाहार कि तुम खाना न खाएं। उसमें भोजन भोजन का ही स्मरण आएगा। वह तपश्चर्या की हुई, यह तपश्चर्या अपने से हुई। महावीर ने तपश्चर्या की नहीं, यह बात ही भ्रांत है। या कोई कभी तपश्चर्या करता है? सिर्फ अज्ञानी तपश्चर्या करते हैं। ज्ञानियों से तपश्चर्या होती है। होने का अर्थ यह है कि उनका जीवन, उनकी पूरी चेतना कहीं ऐसी जगह लगी हुई है जहां बहुत सी बातों का हमें खयाल आता है, वह उन्हें नहीं आता। हम सोचते हैं कि वे त्याग कर रहे हैं और उनके कई बात यह है कि उनको स्मरण भी नहीं आ रहा। हम सोचते हैं उन्होंने बड़ी बहुमूल्य चीजें छोड़ दी। हम सोचते हैं, उन्होंने बड़ा कष्ट सहा। और वह हमारा मूल्यांकन में, भेद असल मग वैल्युएशन में हमारे और उनके अलग हैं। जिस चीज को महावीर सार्थक समझते हैं, हम उसे व्यर्थ समझते हैं। जिसको वे व्यर्थ समझते हैं, हम सार्थक सकते हैं। तो तब हम उनको हमारी दृष्टि से सार्थक को छोड़ते देखते हैं तो हम सोचते हैं, कितना कष्ट झेल रहे हैं, कितनी तपश्चर्या कर रहे हैं! और उनकी कई स्थिति बिल्कुल दूसरी है। जो व्यर्थ है वह छूटता चला जा रहा है। महावीर ने घर छोड़ा--हां, वह बिल्कुल सहज छूट रहा है। तपश्चर्या करनी नहीं है, केवल ज्ञान को जगाना है। जो जो व्यर्थ है वह छूटता चला जाएगा। और दूसरों को देखेगा कि आप तपश्चर्या कर रहे हैं और आपका दिखेगा कि आप निरंतर ज्यादा आनंद को उपलब्ध होते चले जा हरे हैं। दूसरों को दिखेगा, बड़ा कष्ट सह रहे हैं और आपको दिखेगा हम तो बड़े आनंद को उपलब्ध होते चले जा रहे हैं। धीरे-धीरे आपको दिखेगा, मैं तो आनंद को उपलब्ध हो रहा हूं, दूसरे लोग कष्ट भोग रहे हैं। और दूसरों को यही दिखेगा कि आप कष्ट उठा रहे हैं और वे आपके पैर छूने आएंगे और नमस्कार करने आएंगे कि आप बड़ा भारी कार्य कर रहे हैं। तपश्चर्या दूसरों को दिखाती है, स्वयं को केवल आनंद है। और अगर स्वयं को तपश्चर्या दिखती है तो अज्ञान है, और कुछ नहीं है। वह पागलपन कर रहा है और अगर उसको स्वयं को दिखता है कि मैं बड़ा तप कर रहा हूं और बड़ी तपश्चर्या और बड़ी कठिनाई तो वह बिल्कुल पागल है, वह नाहक परेशान हो रहा है। और उसमें केवल उसका दंभ विकसित होगा, आत्म-ज्ञान उपलब्ध नहीं होगा।
जो तपश्चर्या करता है यह दंभी है, वह अहंकारी है और वह अहंकार का पोषण करता है। जब वह सुनता है, उसने तीस उपवास किए और चारों तरफ लोग फूल मालाएं लिए खड़े हैं। तो जो सुख मिल रहा है वह इन फूलमालाओं का और इन लोगों का आदर का और सम्मान का है, तपस्वी कहलाने का है। और जिसमें सच तपश्चर्या हुई हो उसे पता भी नहीं पड़ता है। आप उसका सम्मान करने जाएं तो उसे सिर्फ हैरानी भर होती है कि आपको क्या हो गया है। उसे तपश्चर्या का बोध नहीं होता है। तो मेरी दृष्टि में तो एक ही तपश्चर्या है और वह तपश्चर्या यह है कि जागरूकता को पैदा करें, मूर्च्छा को तोड़ें, चित्त की विकार विकल्प की स्थिति को विसर्जित करें, निर्विकल्प समाधि को उत्पन्न करें। और उसे परिणाम में जो जो परिवर्तन होंगे वे दूसरों को दिखाई पड़ेंगे कि तपश्चर्या हो रही है। अब जैसे महावीर का उल्लेख है। महावीर को लोगों ने मारा, ठोका, पीटा, उनको कष्ट दिए। हमको लगता है, यह आदमी कितना सहा है, कितना तपस्वी था,। लोग मार रहे हैं। और वह सह रहे हैं। हमको ऐसा लगता है क्योंकि महावीर की जगह हम अपने को रखकर सोचते हैं। अगर लोग हमको मार रहे हैं और हमको उन्हें न मारना पड़े तो कितना कष्ट होगा, कितनी तपश्चर्या होगी। और जहां तक महावीर का संबंध है, उन्हें केवल यही हैरानी हो रही होगी कि इन विचारों को कैसी पीड़ा है कि ये मारने को उतारू हो गए हैं।
एक साधु थे उत्तर प्रदेश में। उनको अनेक लोग मानते थे, बड़े-बड़े राजा महाराजा उनकी सेवा में जाते थे। किसी राजा ने बहुत से स्वर्ण-पात्र उनको भेंट कर दिए थे। देवहरवा बाबा उनका नाम था। पूरा का पूरा एक बड़ा बोरा भर कर भेज दिया। तो वहां तो झोपड़े में सांकल भी लगाने को नहीं थी। रात को एक चोर

उसको उठा कर ले गया। तो देवहरवा बाबा नंगे पड़े रहते थे उस झोपड़े में। उन्होंने अंधेरे में देखा कि कोई उठाने आया है, तो उनको आंसू आ गए कि बेचारा इतनी रात आया, जरूर तकलीफ में होगा। वह पहली बात उनको जो खयाल में आई, इतनी रात आया। अरे दिन में आ जाता! जरूर ज्यादा तकलीफ में होगा, नहीं तो कौन इतनी रात, ठंडी रात और इधर आना इसकी परेशानी, इस पहाड़ी को पार करना, पहाड़ी में आना! अंधेरे में डर भी लगा होगा, रास्ते में दिक्कत भी हो सकती है और यह बेचारा आया तो जरूर तकलीफ में है। वह बोरा था वजनी और वह आदमी था कमजोर। वह उसको उठाता था, पूरा उठता नहीं था। मोह था घना, छोड़ सकता था नहीं। तो उनको भारी कष्ट लगा कि यह बेचारा है कमजोर और बोरा है वजनी। उस राजा को मैं पहले ही कहा था कि थोड़े ही भेंट कर, इतना क्या करेगा। आधे बोरे भेंट किए होते तो यह उसे बड़ी आसानी से ले जाता। और इस मूर्ख को यह भी पता नहीं कि अपनी ताकत से ज्यादा काम नहीं करना। दुबारा आ जाना इतना क्या जल्दी है! उनको यह भी लगा कि इसको मैं उठा कर सहारा दे दूं। मगर यह कहीं चौंक न जाए, भाग न जाए इसलिए दिक्कत है। और किसी के काम में अपने को बाधा नहीं बनाना है, यह भी खयाल था। फिर जब उनसे नहीं सहा गया तो वे उठे, वह उसको पीछे से उठा रहा था। ऊपर से उन्होंने हाथ लगाया। उसको दरवाजे के बाहर पहुंचाया। बाहर जाकर कहाः भैया, इससे आगे मैं नहीं जा सकता। अब तू ले जा। लेकिन एक बात भर स्मरण रख--बोरा गिर पड़ा, जब उसने आवाज सुनी। अब वह हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। उन्होंने कहाः एक बात भर स्मरण रख हमेशा, अपनी ताकत के हिसाब से काम करना। बोरा बड़ा है, ताकत तेरी कम है। थोड़ा दूध-मलाई खा, ताकतवर बन, तब बड़े बोरे उठाया कर। अभी छोटे बारे उठाना। वह तो पैर पर गिर पड़ा वह तो बोरा चोरी नहीं गया। वह तो उनका भक्त हो गया। लेकिन वह घटना बड़ी महत्वपूर्ण है। उस आदमी को कैसा दिखेगा, उसका मूल्यांकन भिन्न है। जिन लोगों ने महावीर को जाकर मारा होगा उनको क्या दिखा होगा? उनको दिखा होगा, ये बड़े उद्विग्न हैं, बड़े परेशान हैं, नहीं तो मुझे काहे को मारने आते। परेशानी है इसके भीतर कुछ, जो इनके मारने में प्रकट हो रही है। सिर्फ इस वजह से दया और करुणा भर आई होगी। इस वजह से कोई दूसरा प्रश्न नहीं उठता। हमको लगता है, उन्होंने बड़ा कष्ट सहा। उनको लगा होगा, यह जो मारने आए, बड़े कष्ट में हैं।
यह तप का, कष्ट का और पीड़ा का और सहने का ये सारे शब्द.गलत है। मनुष्य
को जो आनंदपूर्ण है उसके अनुसार व्यवहार करता है। हमको जो आनंदपूर्ण है हम उसको मान कर व्यवहार करते हैं। उनको जो आनंदपूर्ण है उसको मानकर व्यवहार करते हैं। और दोनों के आनंद के दृष्टि में जमीन आसमान का अंतर है। इसलिए जो हमको तप है, वह उनको आनंद है। और जो हमारे आनंद है, उनके लिए अज्ञान है। वह हम पर दया से भरे हुए हैं कि हम मूर्ख हैं, हम किन चीजों में अपने समय को खो रहे हैं। और हम उनके ऊपर श्रद्धा से भरे हुए है कि कितने महान हैं कि बड़ा त्याग कर रहे हैं।

प्रश्नः वह तो समझता है कि मैं तपश्चर्या कर रहा हूं, बड़ा अच्छा कर रहा हूं।

वह भी अगर थोड़ी सी समझ का उपयोग करे तो उसे दिखाई पड़ेगा कि तपश्चर्या
से अहंकार मजबूत हो रहा है या ज्ञान उत्पन्न हो रहा है। इसमें देर न लगेगी। और उसके समस्त व्यवहार में वह दिख जाएगा। साधु जितने अहंकारी हैं इस जगत में--मुश्किल से एकाध प्रतिशत को छोड़ कर जो वस्तुतः साधु हैं--उतना दूसरा आदमी नहीं मिलेगा। वह आस-पास के लोगों को भी दिखता है, उनको भी दिखाता है कि वह मौजूद है। लेकिन पच्चीस व्याख्याएं करके उनके समझाएंगे। मैं अभी एक इलाहाबाद में एक बड़ा यज्ञ था, वहां गया। वहां उन्होंने संप्रदायों के साधुओं को बुलाया हुआ था। उन्होंने इतना बड़ा मंच बनाया था कि उस पर सौ साधु इकट्ठे बैठे सकें। उन्होंने लाख चेष्टा की, हाथ पैर जोड़े कि सारे साधु एक दफा बैठ जाएं मंच पर। दो साधु एक साथ बैठने को राजी नहीं हुए। क्योंकि कोई किसी से नीचे नहीं बैठ सकता था। दो शंकराचार्य मौजूद थे लेकिन दोनों बैठने को राजी नहीं हुए क्योंकि दोनों का सिंहासन एक दूसरे

से ऊंचा होना चाहिए। आखिर उस सौ आदमियों के मंच पर सौ बोलने के मंच पर एक-एक आदमी को भाषण करवाना पड़ा। बाकी लोग सुन भी नहीं सके बैठ कर। वह अपने शिविर में--बोला आदमी, अपने शिविर चला गया। दूसरा साधु बोलाः उसे उसके शिविर में पहुंचा दिया। को दो साधु मंच पर इकट्ठे होकर नहीं बैठते हैं। हैरानी होगी कि मामला क्या है? अभी पूरे मुल्क में यह दिक्कत है। दो साधु मिल जाएं तो कौन किसको पहले नमस्कार करे, यह दिक्कत है। इसलिए दो साधु मिलना नहीं चाहते कि पहले कौन किसको नमस्कार करे? दो साधु इसलिए नहीं मिलना चाहते कि कौन किससे मिल जाए? आप उनसे मिलने गए थे या वह आपसे मिलने आए थे, यह बड़ा महत्वपूर्ण है।
हमें दिखता नहीं, अन्यथा जो तथाकथित साधु हैं, इस तरह वे कामों में लगा हुआ, वह इतने दंभ का पोषण करता है कि उसको कोई हिसाब नहीं है।

प्रश्नः अनंतकाल के बाद आप भी इस अवस्था में अभी आए--यह अवस्था कैसे आई।

यह सब बहुत महत्वपूर्ण नहीं है विचार करने के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण नहीं है कि हम कैसे आया और क्या हुआ! महत्वपूर्ण यह जानना है कि यह कैसे आ सकता है। दो ही बातें महत्वपूर्ण हैं। एक तो हम मौजूद हैं और दुख से भरे हैं, अज्ञान से भरे हैं। एक बात तो यह विचारणीय है कि हम दुख से, अज्ञान से भरे हैं। कितने जन्मों से आए या नहीं, यह सब तो हाइपोथिसिस हैं, हमारी मान्यताएं हैं। इनमें पच्चीस ढंग की मान्यताएं हैं। कोई मानता होगा। कि नहीं आए, कोई मानता है पहले ही जन्म है, कोई कहता है पचास जन्म है। इनसे कोई लेना-देना नहीं है। महत्वपूर्ण मुद्दे के तथ्य इतने हैं, जिनमें कुछ सोचना नहीं पड़ेगा जो कि मौजूद हैं, जिनमें हमें कोई चीज परिकल्पना नहीं करनी पड़ेगी जो कि वर्तमान है! वर्तमान इतनी बात है कि मैं और आप मौजूद है और दुख से भरे हैं और जिस स्थिति में है उससे तृप्त नहीं है। यह एक तथ्य ऐसा है, जिसे किसी धार्मिक को विधि से सोचने की जरूरत नहीं है। वह वास्तविक तथ्य है। बाकी तो सब विस्तार है सोचने का। यह वास्तविक तथ्य है कि मैं दुख से भरा हुआ हूं। यह भी वास्तविक तथ्य है कि इस दुख से मैं सहमत नहीं हूं, ऊपर उठना कैसे हो सकता है? बाकी बातें मौन है और बाकी बातों का बहुत मूल्य नहीं है क्योंकि आप क्या करिएगा सोच कर भी? इससे क्या फर्क पड़ता है? यह थोड़ी सी बातें महत्वपूर्ण हैं। यानी हमारे बहुत चिंतन में से हमें उतनी थोड़ी सी बातें लेनी चाहिए। जो कि वस्तुतः महत्वपूर्ण हैं।

प्रश्नः तब कोई पकड़ भी नहीं थी। कोई पकड़ेगा और छह महीने बाद भी पकड़ेगा। कोई अभी शुरुआत करेगा, किसी की शुरुआत कल से हो जाएगी, किसी-किसी की नहीं भी होगी, इसके बारे में आपका क्या कहना है?

किसी के छह महीने बाद होगी, किसी के छह महीने बाद होगी। यह संसार आप नहीं रहेंगे, मैं नहीं रहूंगा, तब भी हरेगा। तब भी किसी की शुरुआत होती रहेंगी और नहीं होती रहेंगी।
--रहने देना है ऐसा, चिंतन नहीं करना।
--लेकिन मैं इसकी चिंता करके क्या करूंगा? मेरे किस उपयोग की होगी यह चिंता कि कौन छह महीने पीछे है, कौन छह महीने बाद? कौन हजार साल पहले कौन हजार साल बाद--मेरे किस उपयोग की होगी? नहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं शुरू न करूं, इसके लिए कोई उपाय और कोई बहाना खोज रहा हूं? बड़ा रहस्य यह है कि हम बहुत अच्छी बातों के पीछे भी सफेद बहाने खोज लेते हैं। जैसे मैं आज शुरू न करूं तो मैं सोचूंगा कि अभी उदय में नहीं आया। जब उदय में आएगा तभी तो होगा। अब मेरे वश में क्या है, अभी उदय में नहीं होगा। जिसके उदय में है वह अभी करेगा। जिसके उदय में छह महीने बाद है वह छह महीने बाद करेगा। कहीं यह उदय की धारणा केवल अपने न करने की स्थिति को छिपाने का उपाय न हो।
हमारी सामर्थय करने की, हम कर सकते हैं। अगर हम न कर सकते होते तो हममें यह आकांक्षा ही नहीं हो सकती थीं कि हम शांत हो जाएं। वह आकांक्षा

कि शांत होना चाहिए, हम पुरुषार्थ के छिपे हुए रूप की सूचना है कि हम हो सकते हैं। यह आकांक्षा कि आनंद मिलना चाहिए उस सुप्त पुरुषार्थ की सूचना है कि आनंद मिल सकता है। नहीं तो यह प्यास नहीं हो सकती थी। यह आकांक्षा नहीं हो सकती थी। यह भीतर हमारे जो, निरंतर चाहे हम कुछ भी चाहे न करें, हमारे भीतर जरूर एक केंद्र पर यह आकांक्षा बनी ही है। यानी वह आकांक्षा सूचना है किसी सोए हुए पुरुषार्थ की। और अगर हम चेष्टा करें तो वह पुरुषार्थ जाग सकता है और यह आकांक्षा प्राप्ति में परिणत हो सकती है। वह हममें कहीं सोया हुआ है और उस सोए हुए के जगाने के बहुत उपाय हैं। धार्मिक लोगों ने किए हैं, लेकिन हम हर तरकीब को गलत कर देते हैं।
बुद्ध शुरू-शुरू में जब ज्ञान को उपलब्ध हुए तो वह काशी आए। वह काशी
के बाहर एक वृक्ष के नीचे ठहरे अकेले थे उस वक्त; कोई भीड़ न थी, कोई संग न था, कोई जानने वाला न था। अभी उन्होंने किसी को उपदेश भी नहीं दिया था। लेकिन ज्ञान उन्हें उपलब्ध हुआ था कि और उसका प्रकीर्ण प्रकाश उनसे दिखाई भी पड़ने लगा था। अनुभव लोगों को होने लगा, कुछ हुआ है। काशी का नरेश संध्या को अपने रथ को लेकर नगर के बाहर निकला था। बहुत चिंतित था। कई भार थे उस पर राज्य के, तो सांझ को भ्रमण को निकला था। सारथी से उसने बीच में एकदम रोक कर कहा कि रोक दो, यह कौन मनुष्य वृक्ष के नीचे लेटा हुआ है? बुद्ध, सांझ को सूरज डूबता था, एक वृक्ष के नीचे बैठे थे। उसने कहाः रोक दो। यह कौन मनुष्य वृक्ष के नीचे लेटा हुआ है इतना आनंद में, इतना शांत? और उसके पास कुछ दिखाई भी नहीं पड़ता है। थोड़ी देर मैं इससे मिलूं। वह उत्तर कर बुद्ध के पास गया और कहाः तुम्हारे पास कुछ भी दिखाई पड़ रहा है, फिर इतने शांत और निश्चिंत कैसे लेटे हो? मेरे पास तो सब-कुछ है, लेकिन न निश्चिंतता है, न शांति है।
बुद्ध ने कहाः एक दिन तुम जिस स्थिति में हो, मैं भी था। और आज के दिन मैं जिस स्थिति में हूं, चाहो तो तुम अभी उस स्थिति में भी हो सकते हो। मैं दोनों स्थितियों से गुजर गया और तुम एक से गुजरे हो। और अगर मुझे देखो तो तुम्हारा पुरुषार्थ जाग सकता है। अगर तुम मुझे देख कर अपमानित हो जाओ तो तुम्हारा पुरुषार्थ जाग सकता है और तुम सिंह गर्जना कर सकते हो कि मैं भी होकर रहूंगा।
यानी मेरी धारणा में तो यही बात है कि महावीर, बुद्ध और ईसा, इनको देख
कर अगर हम अपमानित हो जाएं तो पुरुषार्थ जाग जाए। लेकिन हम इतने होशियार हैं कि हम अपमानित नहीं होते, उलटा उन्हीं का सम्मान करके घर चले आते हैं। उनके पैर में सिर झुका आते हैं। असलियत यह है कि उन्हें देख कर हमें अपमानित हो जाना चाहिए। कहीं हमारे भीतर यह आकांक्षा जग जानी चाहिए कि अगर इनको उपलब्ध हो सका तो... तो मैं? लेकिन इससे बचने के लिए कि हमारा पुरुषार्थ न जगे, हम कहेंगे कि वह भगवान हैं, वह तीर्थंकर हैं, वह अवतार हैं, उनको हो सकता है। हम साधारण जन हैं, हमको कैसे हो सकता है? तरकीबें हैं। यह हमारे हिसाब से हम बच जाएं तो उनको अवतार, उनको तीर्थंकर, उनको भगवान कह कर छुटकारा पाते हैं, कि हम साधारण जन, आप हैं भगवान, आप ठहरे विशिष्ट, आप कर सकते हैं, हम कैसे करेंगे? और एक बहुत बहुमूल्य पुरुषार्थ के जगाने का अवसर हम तीर्थंकर कह कर खो देते हैं।
उन्हें अति सामान्य मानने की जरूरत है--जैसा हम हैं, लेकिन उसमें उनको बहुत दुख होगा। उसमें हमें बहुत आत्मग्लानि होगी। अगर हम महावीर को भी अति सामान्य मानें कि वह भी ठीक हमारे जैसे हैं तो फिर हमें बहुत आत्मग्लानि होगी कि फिर हम क्या कर कहे हैं? वह मारे जैसे हैं, और इस स्थिति को पा सके, और हम क्या कर रहे हैं बैठे हुए? यह आत्मग्लानि न हो, इसलिए हम उनको कहते हैं, तुम तीर्थंकर हो, तुम भगवान हो और हम साधारण जन हैं। हम पूजा ही कर सकते हैं, हम कुछ और नहीं कर सकते।
यह सेल्फ डिसेप्टिव हमारा जो दिमाग है वह उसके खोजे हुए रास्ते हैं
ये सारे तीर्थंकर के, अवतार के, भगवान के, फलां के, ढिंका के। सच बात यह है कि वे ठीक हमारे जैसे लोग हैं और फिर एक दिन अचानक हमारे जैसे नहीं रह जाते हैं। वह जो क्रांति उनमें घटित होती है, वह हममें भी घटित हो सकती है, अगर हम उनको सामान्य मान लें। और चेष्टा की; महावीर बुद्ध ने पूरी चेष्टा की

कि उनको एक सामान्य आदमी आप मान लें। इसलिए ईश्वर से इनकार किया, ईश्वर के अवतार से इनकार किया। लेकिन हम बहुत होशियार हैं, हमने नये शब्द खोज लिए कि न सही अवतार, तीर्थंकर सही; न सही तीर्थंकर, बुद्ध सही, अगर हो भगवान, हम तुम्हें पूजेंगे।
पुरुषार्थ के जागरण का कुल अर्थ इतना ही है, कुछ हममें प्रसुप्त है, कोई एक शक्ति प्रसुप्त हैं हममें, जो अगर जाग सके, अगर हम उसे पुकार सकें तो वह शक्ति हमारे भीतर क्रांति घटित कर सकती है। न पुकार उसको तो चलता है जीवन, चलता चला जाता है। लेकिन एक्सप्लेशंस कोई खोजना मुझे रुचिकर नहीं हैं। वास्तविक तथ्यों को पकड़ ले कि ये तथ्य है हमारे सामने हम दुखी हैं, यह एक तथ्य है। पीछे जन्म था या नहीं, यह कोई तथ्य नहीं है। आगे जन्म होगा या नहीं, यह कोई तथ्य नहीं है। तथ्य यह है कि मैं दुखी हूं। और यह भी एक तथ्य है कि दुख के ऊपर उठने की मेरी आकांक्षा है। तब एक बात ही रह जाती है। दुखी हूं, दुख के ऊपर उठने की आकांक्षा है। फिर से ऊपर उठने का उपाय खोज लेंगे। इससे ज्यादा और कोई अर्थ नहीं है। और अर्थ फिर सब पांडित्य हैं। फिर बहुत शास्त्र हैं और उनको मजे से पढ़ा जा सकता है और उनका अध्ययन किया जा सकता है। और ढेर साधु हैं जो उनकी व्याख्याएं समझा सकते हैं। और वैसे चलता है, उससे कुछ होता नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

वह जो फर्क कर लेते हैं--मैं नहीं कह रहा अपनी बात--वह जो फर्क कर लेते हैं--केवल ज्ञान तो अनेकों को उपलब्ध हुआ है लेकिन केवल ज्ञान उपलब्ध होने पर जो तीर्थ का प्रवर्तन करते हैं, यानी जो सब धर्मों को वापस स्थापित करते हैं ताकि उसके मार्ग से और लोग भी केवल ज्ञान तक पहुंच सकें। केवल ज्ञान उपलब्ध करना--वे स्वयं मुक्त हो जाते हैं। केवल ज्ञान उपलब्ध करके तीर्थ प्रवर्तन करना, धर्म को पुनर्स्थापित करना है। ऐसे पुनर्स्थापित उनके हिसाब से चौबीस होते हैं। धर्म का पुनर्स्थापित करने वाले लोग हैं। एक तीर्थंकर स्थापना देकर, जब उसका एक वक्त होता है कि कुछ वर्ष बीतने पर वह धर्म फिर विलीन हो जाएगा, वह मार्ग फिर अवरुद्ध हो जाएगा, उसको जो पुनर्स्थापित कर देगा वह केवल ज्ञानी तीर्थंकर है। फिर उन्होंने पच्चीस एक्सप्लेनेशंस खोजे हुए हैं कि पिछले जन्म में तीर्थंकर होने का कर्मबंध करता है, फिर वह तीर्थंकर हो सकता है। जो ऐसा कर्म बंध नहीं करता वह तीर्थंकर नहीं होगा।
लेकिन मेरी यह धारणा नहीं है। मेरी धारणा तो यह है कि जो भी सदधर्म को उपलब्ध होता है और सदधर्म के संबंध में बोलता है वह तीर्थंकर है--मेरी बात कह रहा हूं, मैं जो भी सदधर्म को उपलब्ध होता है--और अगर नहीं बोलता उसके संबंध में तो तीर्थंकर नहीं है, केवल सदधर्म को उपलब्ध है, केवल ध्यानी है। और यह जो बोलना और न बोलना है--मेरी दृष्टि में इस भांति सोचने पर लाखों तीर्थंकर हैं, जैसा हमेशा हुए हैं, हमेशा होंगे। और उसमें उन सबको गिन लेता हूं जो कभी भी, जिसने कभी भी स्वयं सत्य को उपलब्ध होकर सत्य के संबंध में किसी को भी कुछ कहा हो। उस दिशा की तरफ कोई भी इंगित किया हो, चाहे एक को किया हो तो भी वह तीर्थ का प्रवर्तनकर्ता है।
यह भी करना नहीं है उसकी तरफ से कुछ। जैसे यह उपलब्ध होता है, वैसे ही बहुत तेज सहज प्रेरणा, बहुत सहज भाव से उस अनुमति को दूसरों से कहने की उसको हो जाती है। इसमें कोई चेष्टित नहीं है कि वह कोई जाकर और चेष्टा करके और विचार करके, योजना करके किसी को कहता हो। यह लगभग ऐसा ही है कि अगर मेरे हृदय में परिपूर्ण प्रेम भर गया है, अगर सतत चौबीस घंटे मेरी चेतना प्रेम से भर गई है तो मेरे तई जो भी आएगा, उसे मैं प्रेम के सिवाय दे नहीं सकूंगा।
एक राबिया नाम की मुसलमान फकीर स्त्री हुई है। कुरान में कहीं एक वचन
है शैतान को घृणा करने के संबंध में। राबिया ने वह वचन काट दिया। कुरान में किसी तरह का संशोधन करना बहुत कुफ्र की, बहुत पाप की बात है। और यह तो हद्द पाप की बात थी कि उसमें किसी वचन को कोई काट ही दे। एक बायजीद नाम

फकीर उसके घर ठहरा था। उसने सुबह-सुबह कुरान पढ़ने को मांगी। यह देख कर कि वचन कटा हुआ है बहुत हैरान हुआ। उसने कहाः यह तरमीम सुधार किसीने किया है इसमें? यह कौन नासमझ है जो कुरान में भी सुधार करता है? राबिया ने कहा मैंने खुद ही किया है। बायजीद तो दंग हो गया। उसने कहाः पागल हो? राबिया ने कहा, जब से मेरा हृदय शांत हुआ उसमें घृणा है ही नहीं तो अब मैं शैतान को घृणा कैसे करूं? शैतान भी मेरे सामने खड़ा हो जाए तो मैं जितना प्रेम ईश्वर को कर सकती हूं उतना ही उसको कर सकती हूं। क्योंकि वह मेरे भीतर रहा नहीं। अब मैं प्रेम और घृणा करती नहीं। मैं प्रेम से भर गई हूं तो प्रेम ही होता है। जो ज्ञान से भर गया है, उसे सहज ज्ञान प्रकीर्ण होगा।
हम भी अज्ञान को प्रकीर्ण करते हैं। अगर हम इसको समझ लें तो हम ज्ञानी
के ज्ञान को प्रकीर्ण करने को समझ लें हमको पता न भी हो कि आत्मा क्या है, तो भी हम बताने को जरूर किसी को मिल जाएंगे। और उसको बताएंगे कि आत्मा यह है और धर्म यह है। हम अज्ञान को प्रकीर्ण करते है, अज्ञान को फैलाते हैं। वैसे ही एक स्थिति ज्ञान की है जब व्यक्ति उपलब्ध हो जाता है तो सहज--जैसे हम अज्ञान को फैलाते रहते हैं वैसे हम ज्ञान को फैलाने लगते हैं। उसमें कोई चेष्टित नहीं है। जगत में जितने लोगों ने भी धर्म को उपलब्ध करके उसके संबंध में किसी को भी इशारा किया हो वे सारे लोग मेरे लिए तीर्थंकर हो जाते हैं। यह भी अपनी बात कह रहा हूं। परंपरागत जैसा जैन सोचते हैं, उनका हिसाब वैसा है।

प्रश्नः ज्ञान क्या है?

उसकी ही बात करता हूं। मैं जो पूरी बात करता हूं। मेरे लिए तो दो स्थितियां हैं हमारी। ज्ञान की एक स्थिति वह है जो हम कुछ जानते हैं। जैसे मैं ज्ञान, इस वस्तु को देख रहा हूं, ज्ञान से आपको देख रहा हूं। ज्ञान से जब किसी को जानता हूं। ज्ञान पूरे वक्त किसी न किसी को जान रहा है। यह ज्ञान की मिश्रित स्थिति है। इसमें ज्ञान भी है। ज्ञाता पीछे छिपा है और ज्ञेय सामने खड़ा हुआ है। मैं हूं जानने वाला, वह पीछे छिपा हुआ है। आप, जिसको मैं जान रहा हूं, मेरे समाने खड़े हैं और दोनों के बीच का जो संबंध है वह ज्ञान है। तो मुझे दो बातों का पता चल रहा है--एक तो ज्ञेय का और ज्ञान का। ज्ञाता का पता नहीं चल रहा है। एक ज्ञान की स्थिति यह है।
और एक ज्ञान की स्थिति वह है कि ज्ञेय तो कोई भी नहीं है। ज्ञान है और ज्ञाता का पता चल रहा है। ये तीन बिंदु हैं न! ज्ञेय है ज्ञान है और ज्ञाता है। हमें तो ज्ञेय का पता चलता है और ज्ञान का पता चलता है, ज्ञाता का पता नहीं चलता है। यह मिथ्या ज्ञान है। जो जान रहा है उसका तो पता नहीं चल रहा है, जो जाना जा रहा है उसका पता चल रहा है ज्ञेय न हो, ज्ञाता रह जाए और ज्ञान रह जाए तो यह सम्यक ज्ञान है। ज्ञाता का पूजा चल रहा है। और ज्ञान की क्षमता का पता चल रहा है, वह सम्यक ज्ञान है। मिथ्या ज्ञान से सम्यक ज्ञान पर परिवर्तन होगा। अगर ठीक से इस बात को समझें तो जब ज्ञेय पता नहीं चलेगा तो ज्ञात भी पता नहीं चलेगा क्योंकि वह अंतर्सबंधित था। ज्ञेय था इसलिए हम उसे ज्ञाता कहते थे। जब ज्ञेय कोई भी नहीं रहा तो उसे ज्ञाता भी नहीं कहेंगे। तब मात्र ज्ञान का अनुभव होगा। केवल मात्र ज्ञान है, इसको अनुभव होगा। उस केवल मात्र ज्ञान के अनुभव को केवल ज्ञान कहा है। केवल ज्ञान की शक्ति भर का बांध होगा। न कोई जान रहा है, न कोई जाना जा रहा है। केवल जानने की क्षमता का संपदन हो रहा है। केवल कांशसनेस भर रह गई। किसी चीज के प्रति कांशस नहीं है, कोई कांशस नहीं है, केवल प्योर कांशसनेस रह गई है।
यह प्यारे कांशसनेस समाधि में भी अनुभव होगी। लेकिन समाधि में यह थोड़ी देर टिकेगी और विलीन हो जाएगी। अगर यह सतत चौबीस घंटे अनुभव लेने लगे तो केवल ज्ञान की जो प्राथमिक अनुभूतियां हैं वह समाधि मिलनी शुरू होगी। और जब समाधि पूरे चौबीस घंटे पर फैल जाएगी तो वह केवल ज्ञान हो जाएगा।
ज्ञान मात्र का शेष रह जाना, ज्ञाता और ज्ञेय दोनों का मिट जाना है।
अभी हमको एकदम से दिक्कत होगी, वह ज्ञान मात्र कैसा रह जाएगा? क्योंकि अभी तो हम जब भी जानते हैं ज्ञान को, तब किसी को जान रहे हैं। अभी मैं केवल

कह सकता हूं। लेकिन अगर ध्यान का प्रयोग चले तो किसी दिन समाधि में लगेगा कि अकेला मैं ही रह गया था, केवल ज्ञान मात्र रह गया था। न कोई जान रहा था, न कोई जाना गया था, केवल ज्ञान मात्र रह गया था। न कोई जान रहा था, न कोई जाना जा रहा था, केवल ज्ञान था। केवल एक कांशसनेस भर रह गई थी। उस वक्त पहला अनुभव मालूम होगा, जो कि सूचना देगा कि मात्र ज्ञान के अकेले रह जाने का क्या अर्थ होगा।
कुछ बातें ऐसी हैं कि शब्द तभी उनको बता पाते हैं जब साथ में अनुभूति
भी हो। और सच तो यह है कि हमारे सामान्य जीवन के भी शब्द जब अनुभूति हो तभी कुछ बता पाते हैं। जैसा मैंने कहा, किवाड़--तो मेरा शब्द आपको कुछ सूचना दे पाता है क्योंकि आप भी किवाड़ को जानते हैं। अगर आप किवाड़ को नहीं जानते तो शब्द तो मेरा आपके कान में गूंजेगा लेकिन कोई अर्थ बोध नहीं होगा। शब्द अर्थ नहीं देता, अर्थ तो स्वयं की उसी वस्तु की सामान्य अनुभूति से आता है। मैंने कहा किवाड़ अगर आप भी किवाड़ से परिचित हैं, तो मेरा शब्द सार्थक हो जाएगा। और मैंने कहा किवाड़ और आप किवाड़ से परिचित नहीं हैं तो किवाड़ केवल ध्वनि रह जाएगा, उसमें अर्थ नहीं होगा।
तो सामान्य में शब्द तभी बोधपूर्ण होते हैं जब उनकी सामान्य अनुभूति होती है। धर्म के जीवन में दिक्कत है। वहां शब्द भी गूंजते रह जाते हैं। मैंने कहा, आत्मा--ध्वनि है, शब्द नहीं है यह। जब तक कि वहां भी अनुभूति न हो, तब तक यह केवल ध्वनि है। इससे कुछ बोध नहीं होता कि क्या! एक कान पर एक शब्द गूंजता है आत्मा, और विलीन हो जाता है। अर्थ तो इसमें तब आएगा जब थोड़ी सी अनुभूति भी दूसरी तरफ आएगी।
कबीर से एक मुसलमान फकीर फरीद मिला था। फरीद निकला था यात्रा को, कबीर
उन दिनों मगहर काशी के पास रहते थे। वह करीब से निकला तो कबीर के भक्तों ने कहा कि ऐसा करें, फरीद को दो दिन रोक लें, आप दोनों में चर्चा होगी तो हमें बड़ा आनंद आएगा। फरीद बोलाः तुम चाहो रोक लो, चाहो तो आनंद ले लेना, चर्चा शायद ही हो। समझे कि कबीर ने यूं ही मजाक में कहा है। फरीद के भी शिष्य जो उसके साथ जा रहे थे उन्होंने कहा कि बड़ा भला हो, दो दिन कबीर का आश्रम पड़ेगा, वहां रुक जाएं। आपकी चर्चा होगी, हमको बड़ा आनंद होगा। उसने कहा कि तुम चाहो तो रुक जाओ, आनंद मिल जाए, लेकिन चर्चा शायद ही हो। उनके भक्त मिले तो दोनों ने कहा, ऐसा ऐसा कहा था। वे दोनों मिले, दोनों गले मिले, दोनों खूब हंसे, दोनों दो दिन रहे, लेकिन अदभुत कथा है कि दोनों कुछ बोले नहीं। दो दिन बाद कबीर विदा भी कर आए दोनों के बाहर, दोनों गले मिल लिए, लेकिन वह बातचीत हुई नहीं। दोनों के भक्त बहुत परेशान हुए और उन्होंने लौट कर पूछा कि हम तो थक गए दो दिन राह देख कर। कुछ तो बोलते! कबीर ने कहाः बोलते क्या, जो वे जानते हैं, वह मैं जानता हूं। फरीद ने भी कहाः जो वे जानते हैं वह मैं जानता हूं। अनुभूति बिल्कुल इनकी एक सी है, बोलने को कुछ है नहीं।
यह धार्मिक जीवन की अदभुत बात है कि अगर अनुभूति बिल्कुल एक सी हो जाए आत्म जीवन की, तो बोलने को कुछ नहीं रह जाता। और जब तक अनुभूति एक सी नहीं है तब तक जो बोला जाता है, वह कोई अर्थ नहीं लेता। तब तक बोला जा सकता है, लेकिन अर्थ नहीं होता। और जब अनुभूति एक सी हो जाए, बोलने को कुछ नहीं रह जाता, तब अर्थ मिल सकता है। अब जैसे हम कहें, केवल ज्ञान। तो कुछ समझाया जा सकता है, लेकिन समझाने से कुछ बोध होगा बहुत, यह नहीं पकड़ में आता। इसलिए हमको अक्सर लगता है कि तृप्ति तो नहीं हुई उस बात को सुनने में। तृप्ति नहीं होगी। तृप्ति तो उस दिन होगी जब थोड़ी सी झलक उस बात की मिल जाए, जब केवल ज्ञान मात्र रह गया।
तो मैंने यह अनुभव किया--धीरे-धीरे मैंने यह कहना भी शुरू किया कि ग्रंथ जो धर्म के हैं वह साधना के बाद पढ़े, तो उनमें कुछ आनंद जाएगा। साधना के पूर्व पढ़ने में कोई आनंद उपलब्ध नहीं होगा। थोड़ी साधना हो तो कई शब्द इतने अर्थपूर्ण है कि साधना उनके अर्थ को खोल देगी। तब एक-एक शब्द आपकी अनुभूति को खोलता हुआ मालूम होगा। मेरी तो धारणा विपरीत सी है। मेरा तो मानना वह है कि योग के जितने ग्रंथ हैं वे साधक को पढ़ने के नहीं है। वह सिद्ध को पढ़ने के हैं। हालांकि तब पढ़ने की कोई जरूरत नहीं रह जाती--पढ़े या

न पढ़े, लेकिन सिद्ध के पढ़ने के लिए है। और वह केवल पहचानने के लिए है कि जो मुझे मिला उसको पुराने सिद्धों ने क्या नाम दिए हैं। इससे ज्यादा कोई माने नहीं हैं। हर शब्द परंपरा शब्द देती है। जैसे जैनों की परंपरा है, बौद्धों की, हिंदुओं की, योगियों की परंपराएं हैं। जब पहली दफा साधक को समाधि का अनुभव होता है तो उसको कुछ नहीं समझता है, इसको मैं क्या कहूं! कुछ कहने को शब्द होता ही नहीं। समझ लीजिए कि मैं इस घर में आया और मैंने पहली दफा कोई चीज इस कमरे में रखी देखी। मैं उसे देखूंगा जरूर, अनुभव जरूर करूंगा लेकिन शब्द क्या दूं? शब्द तो परंपरा से दिए जाते हैं। तो जब पहली दफे व्यक्ति आत्म-साक्षात्कार करेगा तो उसको समझ में नहीं आता, क्या शब्द दूं। तो अगर वह बौद्ध की परंपरा में पला है तो उसके ग्रंथ इसको बताएंगे कि इसको क्या नाम देना है। अगर वह जैनों की परंपरा में पला है तो जैन परंपरा के ग्रंथ बताएंगे कि इस अनुभूति को क्या नाम देना है। तो उसमें ग्रंथों में लक्षण भी दिए हुए हैं, नाम भी दिए हुए हैं। लक्षण उसको सूचना देंगे कि ठीक, यह बात घट गई है, और नाम उसे मिल जाएगा। परंपराएं केवल नाम देती हैं, ज्ञान नहीं देती है। ज्ञान अनुभव से आता है, नाम परंपरा से मिल जाते हैं। और उलटी हमारी स्थिति है, हम पहले नाम पढ़ लेते हैं, ज्ञान तो आता नहीं। नाम सीख जाते हैं और फिर उन्हीं में से हम प्रश्न पूछते रहते हैं, और जिंदगी भर उलझते रहते हैं कि वह क्या है और फलां क्या है, ढिकां क्या है। उससे कुछ हल नहीं होता है। बिल्कुल फिकर छोड़ दे नामों की, शब्दों की। कोई चिंता न करें, एक ही चिंता करें कि मेरे भीतर कुछ घटित होता है।

आप कह रहे हैंः थोड़ा सा ज्ञाता और ज्ञेय को थोड़ा सा और गहराई से समझा जाए तो उपयोगी होगा।

जब भी मैं किसी वस्तु को जान रहा हूं, किसी भी वस्तु को जान रहा हूं तब
उस जानी हुई वस्तु का प्रभाव मुझ पर छूटता है। मैं आपको देख रहा हूं, प्रभाव, एक प्रतिबिंब मेरे भीतर छूटा। कल जब मैं आपको दुबारा देखूंगा तो मैं आपको नहीं देखूंगा, उस प्रतिबिंब के माध्यम से आपको देखूंगा। वह प्रतिबिंब मेरे बीच में आ जाएगा कि कल भी देखा था, यह वही है और उसके माध्यम से मैं आपको देखूंगा। हो सकता है, रात्रि आपको बिल्कुल बदल गई हो। हो सकता है आप बिल्कुल दूसरे आदमी हो गए हों। हो सकता है आप क्रोध में आए हों, अब प्रेम में आए हों। लेकिन मेरा जो कल का ज्ञान है वह आज खड़ा होगा, वह मेरी स्मृति होगी। उसके माध्यम से मैं आपको जानूंगा। हम असल में चौबीस घंटे जो भी जान रहे हैं, जो वास्तविक है, उसको हम जान रहे हैं, जो स्मृति का संकलन है, उसके माध्यम से उसकी व्याख्या कर रहे हैं। इस स्मृति के माध्यम से हम उसकी व्याख्या कर रहे हैं, जो ज्ञेय है। इसलिए हम ज्ञेय को भी नहीं जान रहे हैं, बीच में स्मृति का पर्दा है। अगर आप कल मुझे गाली दे गए और आज फिर मिलने आए तो मैं जानता हूं, यह दुष्ट कहां से आ गया! हो सकता है, आप क्षमा मांगने आए हों। हो सकता है आप कहने आए हों कि भूल हो गई है। हो सकता है आप कहने आए हों कि मैं होश में नहीं था, बेहोश था, शराब पीए था। लेकिन मैं यह सोच रहा हूं कि ये सज्जन कहां से आ गए। और बीच में वह कल का पर्दा आपका खड़ा हो जाएगा। मैं आपके चेहरे को नहीं देखूंगा जो अभी मौजूद है। मैं उस चेहरे को बीच में पहले देखूंगा जो कल मौजूद था।
स्मृति ज्ञेय के और ज्ञाता के बीच में हमेशा खड़ी है। इसलिए हम ज्ञेय
को भी नहीं जान पाते। और स्मृति का जो संकलन है उसी को हम ज्ञाता समझ लेते हैं तो भ्रम होता है। ज्ञेय को हम नहीं जान पाते हैं, स्मृति बीच में आ जाती है। और स्मृति का जो संकलन, एकुलमेशन है मेमोरी का, हम समझ लेते हैं यही मैं जानने वाला हूं। जैसे अगर कोई आपसे पूछे, आप कौन हैं? तो आप क्या बताइएगा? आप कुछ स्मृतियां बताइएगा। मैं फलां का लड़का हूं, यह एक स्मृति है। तीस साल मैंने यह अनुभव लिए, उनमें से कुछ बताएंगे, यहां पढ़ा हूं, यहां नौकरी करता हूं, यहां यह हूं, यहां वह हूं। यह सारी आपकी मेमोरी है बीस वर्ष की। इनका एकुमिलेशन आप हैं। इसलिए कभी-कभी यह होता है कि किसी चोट से अगर स्मृति विलीन हो जाती है और उससे पूछिए कि आप क्या हैं तो वह खड़ा रह

जाता है। उसको याद ही नहीं पड़ता कि कोई स्मृति हो। थोड़ी दूर आप कल्पना करिए कि आपकी स्मृति पोंछ दी जाए तो आपसे फिर पूछा जाए कि आप क्या है तो आप खड़े रह जाएंगे। आपको कुछ उत्तर नहीं सूझेगा कि मैं क्या कहूं। क्योंकि आप जो भी उत्तर देते हैं, वह स्मृति से है।
स्मृति का जो संग्रह है, उसी को हम समझ लेते हैं, मैं हूं स्मृति ज्ञेय
को भी नहीं जानने देती। स्मृति का संग्रह ज्ञाता को भी नहीं जानने देगा।
स्मृति के पीछे ज्ञाता छिपा हुआ है और स्मृति के आगे ज्ञेय बैठा हुआ है।
बीच में स्मृति की धारा है। उस तरफ ज्ञेय है, इस तरफ ज्ञाता है, बीच में मेमोरी है। मेमोरी न ज्ञेय को जानने देती है न ज्ञाता को जानने देती है। अगर मेमोरी का, स्मृति विसर्जन हो जाए तो मैं ज्ञेय को पहली दफा देखूंगा। और पहली दफा इंस्टीटीनियस--अलग-अलग घटना नहीं घटेगी यह, क्योंकि ज्ञाता और ज्ञेय साथ ही जाने जाएंगे। जिस क्षण मैं ज्ञेय को देखूंगा उसी क्षण ज्ञाता को भी। ये अलग नहीं जाने जाएंगे। दोनों एक साथ, दोनों एक साथ अनुभव होंगे। और वह साथ होना इतना गहरा होगा कि मुझे नहीं मालूम होगा कि ज्ञेय अलग, आता ज्ञाता अलग। मुझे असल में ज्ञान का अनुभव होगा। मुझे कांशसनेस का अनुभव होगा। अगर मेमोरी विसर्जित हो जाए तो केवल ज्ञान का अनुभव होगा। जब हम कहते हैं, महावीर ने, या किन्हीं और ने अपने समस्त पुराने कर्मों से अपना छुटकारा पा लिया तो मैं पाता हूं, कर्म असल में सिवाय स्मृति के और कुछ भी हनीं है। कर्मबंध का अर्थ स्मृतिबंध है। कर्मबंध का अर्थ है मेमोरी। वह जो हम कहते हैं कर्म चिपक जाते हैं, कर्म नहीं चिपकता है, केवल स्मृति चिपक जाती है। किए हुए की स्मृति चिपक जाती है। किए हुए का संस्कार चिपक जाता है। जिसको महावीर निर्जरा कह रहे हैं, असल में डी-मेमोराइड है।

प्रश्नः स्मृति चिपक जाती है या संस्कार?

एक ही बात है, कुछ भी कह सकते हैं। इंप्रेशंस की है--संस्कार कह लें स्मृति कह लें क्योंकि हम स्मृति उसको कहते हैं जो हमको याद है और अनेक संस्कार हमको ऐसे हैं जो हमको याद नहीं हैं। लेकिन जो हमें याद नहीं हैं वह भी हमारे अवचेतन में मौजूद हैं और सब याद किए जा सकते हैं। मैं भी वहां प्रयोग किया। तो आपको पिछले जन्म याद दिलाए जा सकते हैं। एक पूरी स्मृति धारा याद हो जाएगी आपको एक-एक पर्दा भीतर मौजूद है, उघाड़ा जा सकता है। और आपको फिल्म की तरह सब दोहराने लगेगा, यह हुआ, यह हुआ। और अगर आपकी सारी स्मृति उघाड़ दी जाए तो आप हैरान होंगे, एक दफा जो संस्कार पड़ा है चित्त पर वह मौजूद है। सब संस्कार स्मृति में है। और सच तो यह है कि अगर मैं आपसे अभी पूछूं कि उन्नीस सौ पचास में एक जनवरी को आपने क्या किया, आपको कुछ याद नहीं हैं। आप कहेंगे, इसकी तो विस्मृति हो गई। इसकी विस्मृति नहीं हुई, या अभी मौजूद है। और मैं अभी आपको बेहोश करूं, हिप्नोटाइज करूं और आपसे पूछूं तो आप एक तारीख को ऐसे दोहरा देंगे जैसे अभी देख रहे हैं।
मैं कुछ दिन प्रयोग करता था तो मैं बहुत हैरान हुआ। वह तो कुछ भूलता
ही नहीं है। फिर मुझे यह दिक्कत हुई कि पता नहीं एक तारीख को आपने किया या नहीं, या बेहोशी में आप कुछ भी अनर्गल बोलते हैं। फिर मैं कुछ लोगों पर नियमित रूप से ध्यान रखा। उनसे आज मिला तो नोट कर लिया कि उनसे मेरी क्या बात हुई, कि वे क्या कर रहे थे। छह महीने बाद उनको बेहोश करके पूछा, वह तो उन्होंने बताया कि आप दो बजे मुझसे मिले थे और यह मुझसे कहा था। होश में तो उनको पात नहीं कि आप उस दिन उनसे मिले भी थे या नहीं मिले थे।
फिर मैं धीरे-धीरे पिछले जन्मों में भी प्रयोग किया। आप हैरान होंगे, मां के गर्भ में भी आप पर जो संस्कार पड़े हैं, वे स्मरण दिलाए जा सकते हैं। जिस क्षण कंसेप्शन हुआ मां के पेट में आपका, वे संस्कार भी स्मरण दिलाए जा सकते हैं। फिर धीरे से उस पर, उस जन्म के भी जो संस्कार है वे भी स्मरण दिलाए जा सकते हैं। सारे जन्म-मरण की पूरी कथाएं स्मरण आ सकती हैं। वह सब मेमोरी है। और अगर मेमोरी से कोई बिल्कुल मुक्त हो जाए तो वह निर्जरा है। अगर ये सारी मेमोरीज ढह जाए और इनसे व्यक्ति पृथक हो जाए और जान ले कि मैं इन मेमोरीज में नहीं हूं, मैं इनके बाहर और अलग हूं। और अगर यह कंडीशनिंग

जो मेमोरीज से पैदा हुई है ये सब विसर्जित हो जाएं तो मोक्ष है। स्मृति से मुक्त होना मोक्ष है, और स्मृति में भूलना संसार है। उस स्मृति के विसर्जन में जो भी है वह दिखेगा। स्मृति के विसर्जन में चैतन्य का जागरण है। इसके प्राथमिक प्रयोग विचार के विसर्जन से शुरू होंगे, क्योंकि स्मृति भी केवल विचार के प्रवाह का अंग है, और कोई खास बात नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, फार्स्ट और सेकेंड का कोई सवाल नहीं है। फर्स्ट और सेकेंड का सवाल मेमोरी में है। जैसे मैं यहां बैठा हूं। मैंने इस तरफ से देखना शुरू किया तो जरूर मैं किसी को पहले दिखता हूं, किसी को दूसरे दिखता हूं, फिर किसी को तीसरा देखता हूं। लेकिन जब मैं पहले को देख रहा हूं तब भी दूसरा उसी वक्त पूरा का पूरा मौजूद है। जब मैं तीसरे को देख रहा हूं तब भी दो मौजूद हैं। हम यहां सारे लोग साइमलटेनियसली मौजूद हैं। लेकिन जब मैं देखता हूं, मेरी मेमोरी में मैं जब स्मरण करूंगा तो मैंने पहले एक को देखा, फिर दूसरे को देखा, फिर तीसरे को देखा। जगत में जो एक्झिस्टेंस है वह साइमलटेनियस है, केवल मेमोरी में पास्ट, प्रेजेंट और फ्यूचर है। जगत में यह कहीं भी नहीं है। जगत में अतीत है ही नहीं, जगत में भविष्य है ही नहीं, जगत में सतत वर्तमान है। जगत में कहीं कोई अतीत संग्रहीत नहीं होता, जगत में कहीं कोई भविष्य खुलने को नहीं है। जगत एक इटर्नल नाउ है जो प्रत्येक क्षण पूरा जगत एक सतत प्रवाह है--एक्चुअल जगत जो है।
हमारी स्मृति में अतीत, वर्तमान, भविष्य होते हैं। इसलिए टाइम जो है, समय जो है, वह केवल मेमोरी से पैदा हुई चीज है, टाइम कहीं है नहीं। प्रेजेंट जो हैं वह मेमोरी के हिस्से हैं, वह मेमोरी के हिस्से हैं, इसलिए जिसकी मेमोरी चली जाएगी वह टाइमलेसनेस में चला जाएगा, उसे टाइम का पता नहीं रहेगा। इसलिए लोगों ने कहा, समाधि जो है वह समयातीत है, समय के बाहर है, कालातीत है। वह काल के बाहर है। समाधि में समय नहीं है, काल नहीं है, क्षेत्र नहीं है, केवल होना मात्र है। स्मृति में जो सीक्वेंस है, कुछ चीजें पहले हैं, कुछ चीजें बाद में हैं, कुछ चीजें आगे हैं, उसकी वजह से, उस सिक्वेंस की वजह से टाइम बनता है। अगर सारी मेमोरी विलीन हो जाएं, थोड़ी देर को समझ लीजिए, आपकी सारी मेमोरी अगर विलीन हो गई तो पहले आपका जन्म हुआ, बाद में आपकी मृत्यु हुई, यह आपको पता नहीं चल सकता है। बहुत अजीब सा लगेगा। सारी मेमोरी जब विलीन हो गई तो आपका पहले हुआ और मृत्यु बाद में हुई, ऐसा नहीं कहा जा सकता। शायद उस मेरोरीलेस स्थिति में ये घटनाएं साइमलटेनियस में ये घटनाएं हो ही नहीं। आपको पता ही नहीं पड़े कि कब आप जन्मे और कब आप मरे। यह कब जो है--आगे और पीछे का संबंध वह स्मृति का है स्मृति विलीन हुई तो कब आगे पीछे विलीन हो गया, सिक्वेंस विलीन हो गया। इसलिए एक बहुत अदभुत बात, जो मुझे दिखाई पड़ने लगी, महावीर पच्चीस सौ
साल पहले मुक्त हुए और आप भी मुक्त हो जाएं, तो हमको लगता है कि पच्चीस सौ साल बाद मुक्त हुए। लेकिन कांशसनेस का जो जगत है वहां दोनों साइमलटेनियस मुक्त हो रहे हैं। एक ही साथ मुक्त हो रहे हैं। और यह बात तो अजीब सी होगी, फिर कोई माने ही हनीं होगा दिखने में ऊपर। यह हमारी मेमोरी है जो पच्चीस सौ साल आगे-पीछे करती है। चैतन्य के जगत में सब एक साथ मुक्ति हो रहे हैं और एक साथ बद्ध हैं। वहां कोई समय नहीं है, वहां कोई आगे पीछे नहीं है।

प्रश्नः आदमी जब पागल हो जाता है उसकी क्या हालत है?

हां, अगर आदमी जब पागल हो जाता है तो आदमी अब अकेला स्मृति रह गया, उसे
अब बिल्कुल भी होश नहीं है अपने स्व की। केवल मेमोरी रह गय। आप हैरान होगे, वह जिस दिन पागल होता है उस दिन के बाद की उसकी कोई मेमोरी नहीं रहती है, उसके पहले की ही मेमोरी रहती है अगर एक आदमी आज सुबह पागल हो गया तो वह जितनी बातें करेगा वह आज के सुबह के पहले की हैं, आज के सुबह के बाद की कोई बात नहीं करेगा। आज के सुबह के बाद की कोई मेमोरी नहीं बन रही। अब आज के

सुबह के पहले की सब मेमोरी होगी, उन्हीं को दोहराएगा। उन्हीं को बोलेगा, उनकी बकवास करेगा, वह वही बातें करता रहेगा। उसने होश बिल्कुल खो दिया और जिस घड़ी उसने होश खो दिया, उस क्षण तक जितनी मेमोरी है, अब वही रिपीट होती हरेगी। और इसीलिए वह हमको पागल दिखेगा क्योंकि यह हमेशा असंगत होगा और वर्तमान में उसके ऊपर कोई प्रभाव पड़ नहीं रहे। उसके सब प्रभाव पीछे के रह गए है। इसीलिए पागल में और मुफ्त में करीबी अनुभव एक सी कुछ बातें मालूम होंगी। एक मैं सिर्फ पीछे के अनुभव रह गए हैं, वर्तमान के कोई अनुभव नहीं पैदा हो रहे हैं। वह भी हमको पागल लगेगा क्योंकि वर्तमान से उनकी कोई संगति नहीं है। और मुक्त और सिद्ध भी हमको कुछ न कुछ पागल प्रतीत होगा क्योंकि न उसमें अतीत के कोई स्मरण रह गए हैं, न भविष्य के, न वर्तमान के। उसमें भी हमें थोड़ा सा पागल की झलक मालूम होगी।
इसलिए सारे साधुओं को, सारे संतों को हम चाहे कितना ही आदर हैं, हमको थोड़ा बहुत यह शक बना ही रहता है कि कुछ पागल तो नहीं है! हमारा जो भाव है वह कहीं न कहीं उनके पागल होने का बना रहता है और कहीं किसी किनारे पर वह पागल के करीब मालूम होते हैं। उनकी आंख में भी वही वैक्यूम दिखाई पड़ेगा जो पागल की आंख में दिखाई देता है। वही वैक्यूम--वही आपको देखते हुए भी जैसे आपका नहीं देख रहे हैं, वही बात। आपके बिल्कुल करीब होकर भी जैसे आप दूर हों, वही बात। आंख में वैक्यूम मालूम होगा, जैसे आपको कोई प्रतिबिंब उनकी आंख में नहीं बनता है। आपको वह कोई मेमोरी नहीं पकड़ा रहे हैं। इसलिए बड़े से बड़े सिद्ध की आंक में झांक कर जो आपको पहला अनुभव होगा, वह पागल का होगा। तो आंखें जो अनुभव होगा वह पागल होगा। तो थोड़ा सा दोनों में करीब ही बात है। दोनों में स्मृति का एक संबंध एक सा हो गया है। एक स्मृतियां टूट गई हैं विक्षोभ के कारण। उसके पहले जितनी बनी हैं वह विक्षुब्ध उसमें तैर रही हैं। उसका अब जीवन असंगत हो गया है। एक में स्मृतियां टूट गई हैं अविक्षुब्ध, शांति के कारण। उसमें भी कुछ लहरें नहीं उठ रही हैं। एक विक्षोभ के कारण सब टूट खंडित हो गया है। एक मैं शांति के कारण सब खंडित हो गया है। दोनों बिल्कुल अलग कोनों पर खड़े लोग हैं, लेकिन दोनों एक बात कहीं कुछ समान है। इसलिए भक्त उनको, जिनका भक्त है, साधु समझ लेते हैं, गैर भक्त उसको पागल समझते रहते हैं। तो कोई अंतर नहीं पड़ रहा है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

बहुत फर्क है। फर्क उतना ही है कि हिप्नोसिस जो है, सम्मोहित जो कर रहा है, इस सम्मोहन में भी घटना करीब-करीब वैसी ही घट रही है। जैसे स्वयं ध्यान करने पर घटेगी--करीब-करीब वैसे ही। इसमें भी सूक्ष्म शरीर बाहर निकाला जा सकता है, भेजा जा सकता है, देखा जा सकता है, लेकिन यह दूसरे के द्वारा इनडयूस्ट है और जबरदस्ती है और फोर्स्ड है। यह दूसरे के द्वारा आपमें की गई घटना है। दूसरे के द्वारा की गई घटना से आपको लाभ नहीं है, शायद नुकसान है। आपको कोई लाभ नहीं है। आपके कुछ साइकिक काम करवा ले सकता है लेकिन आपको कोई लाभ नहीं, वरन आपको नुकसान है। आपकी जो अपने रिदम और जर्मनी है आपके साइकिक शरीर की, उसको इसके प्रयोग से नुकसान पहुंचेगा। और जब स्वयं आप अपने प्रयोग से सहज बाहर निकलते हैं तो आपको नुकसान नहीं है, बल्कि अपने भीतर के कुछ राजों कुछ रहस्यों का अनुभव होता है। हिप्नोसिस बेहोशी है, बेहोशी में आपमें कुछ होता है और समाधि परिपूर्ण जागरूकता है। जागरूकता में कुछ हो रहा है। जागरूकता में जब कुछ होता है स्वयं के भीतर तो आप अपने जगत और जीवन के रहस्य के कुछ नये तथ्यों से परिचित होते हैं, वह परिचय आपको आत्म-साधना में सहयोगी होता है। हिप्नोसिस में आप तो परिचित होते नहीं, आप तो बेहोश हैं, आप को कोई लाभ नहीं होता है। लेकिन घटना करीब-करीब एक सी घटती है।
पुरानी स्मृतियां जगानी हों, तो हिप्नोटाइज के बिना कोई रास्ता नहीं
है या फिर ऑटो-हिप्नोटाइज, अपने को खुद करना पड़े तब कोई रास्ता है। इस मुल्क में हिप्नोटिज्म का प्रयोग बहुत प्राचीन है। लेकिन उसका उपयोग उस ढंग से कभी नहीं किया गया जैसा पश्चिम में कर रहे हैं। इस मुल्क में

हिप्नोटिज्म का प्रयोग भी साधना के पक्ष में किया गया। हिप्नोटिज्म के माध्यम से व्यक्ति को कई सहायताएं पहुंचाई जा सकती हैं साधना में। वह सहायता इस मुल्क में पहुंचाई गई। हिप्नोटिज्म का और कोई प्रयोग कभी नहीं हुआ है। पश्चिम में वह उसके दूसरे प्रयोग शुरू किए हैं क्योंकि उनकी आत्म-साधना से उनका कोई संबंध नहीं है। तो वहां घातक परिणाम आने शुरू हुए। अभी तो उन्होंने वहां अमरीका में हिप्नोटिज्म के खिलाफ एक कानून भी विचार है क्योंकि उसके बहुत घातक परिणाम हो सकते हैं।

जीवन आलोक
तीसरा प्रवचन

नाचो--प्रेम है नाच

दान मैत्री और प्रेम से निकलता है तो आपको पता भी नहीं चलता है कि आपने दान किया। यह आपको स्मरण नहीं आती कि आपने दान किया। बल्कि जिस आदमी दान स्वीकार किया, आप उसके प्रति अनुगृहीत होते हैं कि उसने स्वीकार कर लिया। लेकिन अब दान का मैं विरोध करता हूं, जब वह दान दिया जाता है तो अनुगृहीत वह होता है जिसने लिया। और देने वाला ऊपर होता है। और देने वाले को पूरा बोध है कि मैंने दिया, और देने का पूरा रस है और आनंद। लेकिन प्रेम से जो दान प्रकट होता है वह इतना सहज है कि पता नहीं चलता कि दान मैंने किया। और जिसने लिया है, वह नीचा नहीं होता, वह ऊंचा हो जाता है। बल्कि अनुगृहीत देने वाला होता है, लेने वाला नहीं। इन दोनों में बुनियादी फर्क है। दान हम दोनों के लिए शब्द का उपयोग कर सकते हैं, लेकिन दान उपयोग होता रहा है उसी तरह के दान के लिए, जिसका मैंने विरोध किया। प्रेम से जो दान प्रकट होगा, वह तो दान है ही।

प्रश्नः अगर कोई आदमी भूखा मरता हो और उसको खाना खिला दिया तो यह कैसा रहा?

अगर आपको ऐसा खयाल आए कि मैंने खाना खिला दिया तो कोई बड़ा काम कर लिया,
तो यह दान पाप होगा। खयाल तो यह आना चाहिए कि कितनी मजबूरी है, कितनी कठिनाई है! अकाल पड़ जाता है, हम कुछ भी नहीं कर पाते। हम दो रोटी दे पाते हैं। तो दुखी होना चाहिए कि दो रोटी देने से कुछ हो गया है क्या? अगर प्रेम से आप जाएंगे अकाल में काम करने तो आप पीड़ित अनुभव करेंगे कि कितना काम हम कर पा रहे हैं, जो कुछ भी नहीं है। होना तो यह चाहिए कि अकाल संभव न हो, एक आदमी भूखा न मरे। हम कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं। आपकी पीड़ा यह होगी कि सब कुछ करते हुए हम कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं। लेकिन वह जो दान देने वाला है वह वहां से अकड़ कर लौटेगा कि मैंने इतने लोगों को खाना खिलाया था।
तो दान का बोध ही गलत है। प्रेम से दान निकलता है, वह बात ही अलग है। वह इतना ही सहज है कि उसका कभी भी नहीं चलता। उसकी कोई रेखा ही नहीं छूट जाती कुछ। बल्कि प्रेम से दान निकलता है, हमेशा प्रेमी को लगता है कि कुछ कर पाया।
एक मां से पूछें कि उसने अपने बेटे के लिए क्या किया। वह कहेगी मैं कुछ भी नहीं कर पाई। जहां पढ़ाना था, पढ़ा नहीं पाई, जो खाना खिलाना था वह खिला नहीं पाई, जो कपड़ा पहनाना था वह मैं नहीं पहना पाई। मैं लड़के के लिए कुछ भी नहीं कर पाई। और एक संस्था के सेक्रेटरी से पूछें कि उसने संस्था के लिए क्या-क्या किया? तो वह हजार फेहरिस्त बनाए हुए खड़ा है कि हमने यह किया, हमने यह किया, हमने यह किया। जो उसने नहीं किया उसका भी दावा है कि हमने किया। और मां ने जो किया भी, उसकी भी वह दावेदार नहीं है। वह कहेगी कि मैं कुछ भी नहीं कर पाई।
तो प्रेम के पीछे कभी भी यह भाव नहीं छूट जाएगा कि मैंने कुछ किया। और जिस दान में यह भाव रहता है कि मैंने कुछ किया, उसको मैं पाप कहता हूं। वह अहंकार का ही पोषण है।
तो प्रेम से जो दान निकलेगा, उसकी तो बात ही और है। उसको तो दान कहने
की जरूरत ही नहीं है। तो वह निकलता ही रहेगा। प्रेम तो स्वयं ही दान है। लेकिन बिल्कुल ही अन्यथा बात है। और यह दान-धर्म की हम इतनी प्रशंसा करते हैं कि दान दो तो पुण्य होगा, दान दो तो स्वर्ग मिलेगा, दान दो तो भगवान तक पहुंच जाओगे, यह शरारत की बात है। इससे कोई मतलब नहीं है। यह उस आदमी के अहंकार का शोषण है। और इस भांति जो दान दे रहा है वह दान-वान कुछ नहीं दे रहा है। वह फिर शोषण कर रहा है, वह अपने स्वार्थ का फिर इंतजाम कर रहा है। आपकी दीनता-दरिद्रता उसे कहीं भी नहीं छू रही है। बल्कि आप दीन और दरिद्र हैं, इससे वह खुश है। क्योंकि उसे दानी बनने का एक अवसर आप जुटा रहे हैं।

सड़क पर एक भिखारी आपसे दो पैसे मांगे, अगर आप अकेले हैं तो आप इनकार कर देंगे, अगर चार आदमी हैं तो आप दे देंगे। क्योंकि चार आदमी देखते हैं कि दो पैसा दिया। चार आदमी के सामने भिखारी को इनकार करना कि नहीं देंगे आपके अहंकार को चोट लगती है। अकेले में आप दुत्कार देंगे। इसलिए भिखारी प्रतीक्षा करता है, अकेले आदमी से नहीं मांगता है, चार आदमी हों तो पकड़ लेता है। क्योंकि इन तीन के सामने आपके अहंकार का उपयोग करता है। अब जरा मुश्किल है, इनकार करना।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मुश्किल यह है कि जब आप दे रहे हैं तब आप इसलिए दे रहे हैं कि चार लोग देख लें, चार लोगों को पता चल जाए और अगर यह आपकी कंडीशन नहीं है तो उसको मैं दान नहीं कह रहा हूं, उसको मैं प्रेम कह रहा हूं। फिर तो आप यह चाहेंगे कि कोई देख न ले। कोई क्या कहेगा कि दो पैसे भी नहीं हैं एक आदमी के पास? कोई कहेगा क्या? कि एक आदमी ने भीख मांगी और इस आदमी ने दो पैसे दिए। तब आप डरेंगे कि कोई देख न ले, अकेले में चुप-चाप दे देंगे। किसी को कहना मत। पता न चल जाए किसी को। मैं तो कुछ कर ही नहीं पाया, तुम मांग रहे हो। दो पैसे मैं देता हूं यह देना हुआ। और जनरल कंडीशन यह है कि आप प्रतीक्षा कर रहे हैं कि चार लोग जान लें, या अखबार में खबर छप जाए कि इस आदमी ने इतना दिया है। यह मंदिर का पत्थर लग जाए कि इस आदमी ने इतना दिया है, यह नाम खुद जाए। नहीं, यह बिल्कुल जनरल कंडीशन है। दान देने वाले के माइंड की यह स्थिति है। तब तो दान चल रहा है हजारों साल से और दुनिया जरा भी कुछ अच्छी नहीं बन पाती।
तो मेरा कहना यह है कि प्रेम बढ़ाना चाहिए, दान इसलिए की बकवास बंद होनी चाहिए। उस प्रेम से जो दान फलित होगा, वह बात ही और है। उसमें फर्क इतना ही है कि जैसे एक नकली फूल आप ले आए बाजार से और असली फल पैदा हुए। उतना ही फर्क है उन दोनों दान में। तो एक की मैं प्रशंसा करता हूं और एक की निंदा करता हूं। तो उनके बीच का फासला बहुत है, फासला बहुत है।

प्रश्नः कुछ स्वर्ग मिल जाए मृत्यु के बाद या अगले जन्म को ऊंचा कर लिया इस प्रकार... ?

एक आदमी किसी को दान करता है तो यह सचेतन इच्छा नहीं है उसकी। न उसके
इस बात की कोई साजिश का वह हिस्सेदार है कि यह समाज की व्यवस्था बनी रहे। नहीं, यह नहीं कह रहा हूं। समाज का आम जनसमूह जो करता है उसे तो कुछ भी स्पष्ट नहीं है कि वह क्या कर रहा है। समाज का जो आप जनसमूह है वह तो किसी चीज के प्रति अवेयर नहीं है कि वह क्या कर रहा है। लेकिन समाज के ढांचे के जो निर्माता हैं, उसके जो नीति-नियता हैं, वे पूरी तरह से होश में सब कुछ व्यवस्था कर रहे हैं। जिन लोगों ने यह व्यवस्था की कि अगर पति मर जाए तो पत्नी को सती हो जाना चाहिए। उन्होंने यह व्यवस्था नहीं कि कि अगर पत्नी मर जाए तो पुरुष को भी उसके पीछे मर जाना चाहिए। जिन्होंने व्यवस्था की वे पूरी तरह पुरुष वर्ग की तरफ से व्यवस्था दे रहे हैं। उनका बोध बिल्कुल स्पष्ट है कि वह पुरुष की सुरक्षा कर रहे हैं और स्त्री की हत्या कर रहे हैं। लेकिन जो स्त्रियां सती हुई, उनको कुछ भी पता नहीं है। और जिन पुरुषों ने उन स्त्रियों को सती होने की आज्ञा दी उनको भी कुछ पता नहीं है कि यह एक पुरुष की साजिश है, जो स्त्री के खिलाफ चल रही है हजारों साल से। यह जिन लोगों ने मनु महाराज जैसे लोगों ने, जिन्होंने व्यवस्था दी कि दान दो, उन्हें बहुत स्पष्ट है समाज की व्यवस्था का हिसाब, कि अगर नीचे का दरिद्र दरिद्र होता चला जाता है और ऊपर के समृद्ध समाज से उसे कोई भी सहारा, काई भी संतोष, कोई भी सांत्वना नहीं मिलती तो यह समाज चार दिन नहीं चल सकता। यह समाज उखड़ जाएगा। इसी वक्त टूट जाएगा यह समाज को अगर चलाना है तो दरिद्र को थोड़ी बहुत तृप्ति देते रहना अत्यंत आवश्यकता है। समाज की जिन्होंने व्यवस्था दी है उनके सामने बहुत स्पष्ट है कि नीचे का जो वर्ग

है वहां से विद्रोह की संभावना एकदम स्पष्ट है। अगर संतोष न सिखाया जाए उस वर्ग को क्रांति अनिवार्य रूप से फलित हो जाएगी। इसलिए जिन मुल्कों में इस तरह की व्यवस्था देने का लंबा इतिहास है, वहां कोई क्रांति नहीं हो सकी।
अगर रूस या चीन जैसे मुल्कों में क्रांति हो सकी तो उसके पीछे बहुत से कारणों में एक कारण यह भी है कि धार्मिकता का ऐसा लंबा इतिहास नहीं है जो दरिद्र को दान देने की, दरिद्र की सेवा की और दरिद्र को टुकड़े फेंकने की उसने कोई बहुत व्यवस्था की। उस वजह से... और कारण हैं, उस वजह ने भी हाथ बंटाया। हिंदुस्तान में पांच हजार साल में कोई क्रांति नहीं हुई, किसी तरह की क्रांति नहीं जानी हिंदुस्तान ने। उसका कारण है, यहां जिन्होंने नीति दी है, समाज को, उन्होंने बहुत दूरगामी विचार किया है। साफ बात देख ली है कि नीचे का जो वर्ग है वह आज नहीं कल उपद्रव का कारण होने वाला है। उसके उपद्रव को तोड़ देने के हर तरह के उपाय किए गए। एक उपाय कि उसे संतोष देने की निरंतर व्यवस्था होनी चाहिए। उसका असंतोष कभी इतना न हो जाए तीव्र कि उबल पड़े सौ डिग्री तक वह कभी न पहुंच पाए। वह अठानवे, संतानवे से नीचे उतरता रहे, बार-बार उतरता रहे, वहां न पहुंच जाएं जहां कि उबाल आ जाए--एक। उनको यह समझाने की जरूरत है कि वह दरिद्र है तो इस कारण दरिद्र है कि पिछले जन्मों के उसके पाप हैं। अमीर अगर कोई अमीर है तो इसलिए अमीर है कि पिछले जन्म के पुण्य हैं।
ये सारी बातें अगर साफ-साफ हम पूरी की पूरी हम मनुष्य-जाति के समाज के विकास को समझें तो हमें दिखाई पड़ जाएंगे कि ये बातें, जिन्होंने नीति की व्यवस्था दी है समाज को, उनकी आंखों में बहुत साफ हैं। इतनी साफ नहीं, जितनी आज हमें हो सकती है। इतनी साफ उनके सामने नहीं होगी लेकिन इसकी झलक उन्हें साफ है। एक सामान्य आदमी को मैं नहीं कह रहा हूं वह दान देते वक्त यह सोचता है कि यह समाज की व्यवस्था बनी रहेगी। लेकिन दान की व्यवस्था समाज की इस व्यवस्था को बनाने में सहयोगी है। अगर उसकी नीति का पूरा का पूरा आधार समाज की व्यवस्था को बचाने के लिए सहयोगी है।
मैं आपको कहूं, न विनोबा सोचते हैं, न गांधी सोचते हैं यह कि वह जो बातें कह रहे हैं वे बातें हिंदुस्तान में किसी भी सामाजिक क्रांति के लिए बाधा हैं। न विनोबा सोचते हैं, न गांधी सोचते हैं। उनकी नीयत पर शक करना आसान नहीं है। वह कतई नहीं सोचते कि वे जो बातें कर रहे हैं वह आने वाले हिंदुस्तान में किसी भी सामाजिक बड़ी क्रांति के लिए बाधा की बातें कर रहे हैं वे नहीं सोचते। स्पष्ट उन्हें नहीं है यह लेकिन जो भी समाज की जीवन अवस्था वे समझते हैं, वे जानते हैं कि उनकी बातें आने वाली सामाजिक कांति के लिए बाधा बन रही है। और हिंदुस्तान का पूंजीशाही वर्ग अगर उनको सहायता देगा तो वह जानवर सहायता दे रहा है कि ये बातें रुकावट बनेंगी। अगर अमरीका उनकी सहायता करे तो वह जानवर सहायता कर रहा है कि ये बातें रुकावट बनेंगी। आज अमरीकी करोड़पति सारी दुनिया में जिन लोगों को भी सहायता दे रहा है वह यह बात बहुत साफ जान कर सहायता दे रहा है कि बातें आने वाले समाजवाद या साम्यवाद को रोकने के लिए किस तरह से दीवारें बन सकती है। चाहे उन बातों को करने वालों को पूरा साफ न हो... मेरा मतलब यह है कि डाइनैमिक्स जो हैं समाज के, समाज के सामान्य जीवन के चलने के जो उसूल हैं वह, उसमें की बात मैं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि दान रोकना है, समाज को बचाना है। संतोष की बातें समाज में क्रांति के लिए बाधा बनता हैं। और जब तक हम दरिद्र को संतुष्ट रख सकते हैं तब तक हम पूंजीशाही को कायम रख सकते हैं। जिस दिन दरिद्र का असंतोष उस सीमा तक पहुंच जाएगा कि वह हमारी दान-दक्षिणा की शरारतों को समझ जाए और उसे दिखाई पड़ जाए कि ये सब बदमाशियां हैं और इनसे कुछ मेरी दरिद्रता मिटती नहीं, न मेरी दीनता मिटती है। बल्कि मेरी दीनता बनी रहती हैं इन्हीं बातों के कारण, एक तो क्रांति किसी समाज में पैदा होती है। वह जो मैंने कहा, एक-एक आदमी के लिए मैं नहीं कह रहा हूं कि वह कांशसली है कि एक तरफ से वह भिखारी है तो उसे मैं दो पैसा देता हूं तो यह सोचकर देता हूं कि इससे पूंजीवाद बना रहेगा, समाज की व्यवस्था बनी रहेगी--

यह कुछ सोच कर नहीं दे रहा हूं। लेकिन मनुष्य का मन चेतन और अचेतन तलों पर उस तरह काम कर रहा है। और उसमें हम सहयोगी बनते हैं।
मैं जो समझा रहा था वह यह कि करुणा अगर गहरी होगी तो उतना आर-पार देखेगी। वह इतने पर ही नहीं रुक जाएगी कि इस आदमी को दो रोटी मिल जाएं। इसको दो रोटी दे दें, वह बात दूसरी है इस पर रुक नहीं जाएगी कि यह रोटी दे देने से कुछ कम हो गया है। वह इसकी फिकर करेगी कि यह आदमी दो रोटी मांगने की स्थिति में क्यों आ गया है? इसका चिंतन, इसका विचार, इसको बदलने की चेष्टा उस करुणा से पैदा होती है।

प्रश्नः इसको बदलने के लिए क्या उपाय है।

इस तरह का जो मानसिक इंतजाम है उसे तोड़ने की जरूरत है, तो ही यह टूटेगी। और उस मानसिक इंतजाम का वह हिस्सा है जो मैं कह रहा हूं। कोई भी घटना अगर है तो उस घटना के पीछे कारण है, कारण के पीछे मनुष्य के मन की रचना है। मनुष्य के मन को हमने जिस ढांचे का बनाया है उस ढांचे से वह घटना विकसित हुई है। अगर उस ढांचे को हम नहीं बदलते तो वह घटना भी नहीं बदलने वाली है। गरीबी आकस्मिक नहीं है। हमारी जो सोचने, समझने जीने के ढंग हैं, उनसे पैदा हुई है। उस सोचने समझने के, जीवने के ढंग हमारे गलत हैं और गरीबी को बनाए रखने में सहयोगी हैं, यही मैं कह रहा हूं। और मैं यह कह रहा हूं कि दान जैसी व्यवस्था, हम सोचते हैं यही कि हम गरीबी पर करुणा करके कर रहे हैं। हो सकता है, करने वाला यही सोच रहा हो। एक-एक व्यक्तिगत रूप से यही सोच रहा हो कि हम करुणा करके यह कर रहे हैं। लेकिन वस्तुतः यह दान देने का दिमाग गरीबी को बचाए रखने का कारण बनता है और अगर हमें गरीबी मिटानी है तो हमें यह दान देने और लेने वाला दिमाग तोड़ देना पड़ेगा। हमें गरीब को तैयार करना पड़ेगा कि वह इनकार कर दे दान लेने को। गरीब को हमें तैयार करना पड़ेगा। कि वह कहे कि हम गरीबी मिटाना चाहते हैं, दान नहीं लेना चाहते हैं। हमें अमीर से कहना पड़ेगा कि यह दान देने की जो तुम बातें कर रहे हो, यह दान देने की बातें सामाजिक जीवन में खतरनाक हैं और यह नुकसान पहुंचा रही है। अभी विनोबा ने इतना भूदान करवाया। जिस आदमी से दान करवा लेते हैं उस आदमी में कोई फर्क नहीं होता है, वह वही कड़वा आदमी रहता है। वह इधर जमीन दान करता है और कल से सोचता है कि जितनी जमीन दान की है, इस साल मैं कैसे उतना वापस कमा लूं! वह इधर दान देता है, उधर शोषण करता है। उसके शोषण का दिमाग कहीं नहीं जा रहा है। बल्कि, चूंकि वह शोषण करता है इसलिए दान कर पाता है। तो जो बड़ा दानी है वह बड़ा शोषक है। तब वह दान कर पाता है। यानी दान करने की कंडीशन यह है कि आप कितना शोषण कर लेते हैं।
और मजा यह है कि हम मिटाना चाहते हैं गरीबी को, और दान देकर मिटाना चाहते हैं। तो हम पागल हो गए हैं। क्योंकि दान आता है शोषण करने से। तब आप दान कर सकते हैं और दान आप उतना बड़ा कर सकते हैं जितना बड़ा आप शोषण कर सकते हैं। तो पहले गरीबी को और गरीब बना कर शोषण करें, फिर उसको दान करें। एक करोड़ रुपया कमाए और एक लाख रुपया दान करें। यह पूरा का पूरा हमारा सोचने का ढंग बुनियादी रूप से धार्मिक है, और इस चिंतना को चोट पहुंचाने की मैं बातें कर रहा हूं। न मुझे इसकी फिकर है कि सामाजिक रचना में वह किस तरह पैदा हुई। उसकी मुझे बहुत फिकर नहीं है। यह सवाल बहुत बड़ा नहीं है कि गरीबी कैसे पैदा हुई है? बहुत बड़ा सवाल यह है कि गरीबी पांच हजार साल तक कैसे बनी रही? क्योंकि वह जो बने रहने का ढांचा है, वह बना रहने का ढांचा अगर हम तोड़ना शुरू करेंगे तो गरीबी मिटेगी। गरीबी पैदा हुई है निश्चित ही शोषण से पैदा हुई है। बिना शोषण के वह पैदा नहीं हो सकती। और जब पैदा हो गई हो तो गरीब को संतुष्ट करने के लिए हमें चिंता करनी पड़ती है कि इसको संतुष्ट करें। घर में भी आपके--घर में भी आदमी अगर बगावती हो जाए तो आप विचार करने लगेंगे कि उसकी बगावत को कैसे शांत किया जाए। और हजार तरह का इंतजाम कम करेंगे।
अब हिंदुस्तान में गरीबों को शांत करने के लिए हमने कई तरह के उपाय
किए हुए हैं। उनमें वर्ग विभाजन, वर्ण व्यवस्था एक थी कि करोड़ों शूद्रों

को हमने ऐसा ठहराव दे दिया कि वह अपने कर्मफल का फल भोग रहे हैं। उनको दरिद्रता से, उनकी दीनता से उठने का कोई उपाय नहीं है। अगर वे जी रहा हैं तो हमारी करुणा और कृपा पर जी रहे हैं। वह हमारे टुकड़े जो हम दे रहे हैं, उनके ऊपर उनका जीना है। मजा यह है कि जो टुकड़े दे रहे हैं, उनको हमने समझाया है कि तुम बहुत बड़ा काम कर रहे हो, जो इनको टुकड़े देर रहे हो। और उनको हमने समझाया है कि तुम पर बड़ी कृपा की जा रही है। कि तुम को कुछ दिया जा रहा है। और मजा यह है कि उनका हम पूरे वक्त शोषण कर रहे हैं क्योंकि हमारी व्यवस्था उनको कष्ट में डाल रही है और कष्ट से निकालने के लिए हम दान करने का मजा भी दे रहे हैं। पहले एक आदमी को कुएं में धकेल रहे हैं और फिर उसमें हम रस्सी डाल रहे हैं कि देखो हम तुम पर कृपा करते हैं, तुम बाहर निकल जाओ। न वह उस रस्सी से बाहर निकलता है लेकिन यह उसको पता चलना शुरू हो जाता है कि जो आदमी रस्सी डाल कर हमें बाहर निकाल रहा है। कम से कम इसने हमें धक्का देकर गिराया नहीं होगा।
जो ब्राह्मण वर्ग शूद्रों को दान दिलवा रहा है, यह ब्राह्मण तो हम पर कृपा कर रहा है। कम से कम इसने हमारी हालत खराब नहीं की होगी, यह तो पता चल जाता है। मजा यह है कि यही वर्ग उसको दान दिलवा रहा है। यही शरारत है, इसी का षडयंत्र है कि वह करोड़ों लोगों को जमीन पर चित्त डाले हुए है और छाती पर आदमी को खड़ा कर दिया है। एक दफा छाती पर आदमी खड़ा हो गया है, उससे उसको दान भी दिलवा रहे हैं। इसके दोहरे परिणाम होते हैं। वह बेचारा छाती पर चढ़ जाता है, उसको धक्का भी नहीं मार पाता है क्योंकि यह दानी है, यह बचाने वाला है। और यह जो साइकोलॉजिकल मेकअप इस पर मैं चोट करना चाहता हूं। मुझे उतना प्रॉब्लम दूसरा नहीं है। हमारा मानसिक बनावट का जो ढांचा है गरीबी को संरक्षण देता है, वह टूटना चाहिए।
जैसे गांधी जी हैं। गांधी जी से मुझे कुछ लेना देना नहीं है लेकिन हमारी तरकीब, जो हमारा पुराना माइंड है उसको बदलते नहीं हैं, उस पुराने माइंड को आगे बढ़ाते हैं। कहेंगे कि दरिद्र नारायण हैं, कहेंगे कि गरीब भगवान का रूप है। इस तरह गरीबों को आप आदर और प्रतिष्ठा देते हैं। गरीबों को आदर और प्रतिष्ठा देने से गरीबी मिटने वाली नहीं है गरीबी को तो घृणा करने से और गरीबी पर क्रोध करने से, यह मानने से कि गरीबी महा पाप है, यह मानने से कि गरीबी महारोग है, तो हम उससे लड़ेंगे। तुम कह रहे हो गरीबी तो दरिद्रनारायण है, यह दरिद्रनारायण है, इसकी सेवा करनी चाहिए। फिर तुम वही सेवा और दान और वही बकवास फिर तुम जारी करवा रहे हो जो पांच हजार साल से जारी है। इससे दो फायदे होते हैं--दरिद्र तृप्ति हो जाता है कि हम नारायण हैं और अमीर भी निश्चित हो जाता है कि बड़ी अच्छी बातें कर रहे हैं आप। कुछ दान देना चाहिए, कुछ यह करना चाहिए, कुछ वह करना चाहिए। तो उसकी शोषण की व्यवस्था पर चोट नहीं लगती और दरिद्र को अपनी गरीबी में भी सम्मान मिलने लगता है कि मैं दरिद्र नारायण हूं।

प्रश्नः क्या गांधी जी इन सब बातों को जान कर ऐसा कह रहे हैं?

गांधी जी की कांसेस, नीयत पर जरा भी शक नहीं है। गांधी जानकर ऐसा कर रहे हैं, ऐसा मैं नहीं मानता, लेकिन गांधी जी उसी लंबी साजिश में भूले हुए हैं जो चले रही है। और गांधी उसके सहयोगी हैं, उससे अलग नहीं हैं जरा भी। और हिंदुस्तान जब तक गांधी जी से मुक्त नहीं होता तब तक दरिद्रता से मुक्त नहीं हो सकता है। गांधी जी को मैं गाली नहीं देता। गांधी जी को मैं बुरा कहता नहीं। गांधी जी एकदम भले आदमी है। और शायद बहुत भले हैं इसलिए उस लंबी बेवकूफी के हिस्सेदार हो गए हैं। क्योंकि वह जो पांच हजार साल की लंबी परंपरा है, वह इतने भले आदमी हैं कि उस परंपरा के वे हिस्सेदार हैं, उसके भागीदार हैं।

प्रश्नः क्या मनु महाराज इसके जिम्मेवार हैं।

मनु को हुए इतना लंबा फासला हो गया कि मनु के बाबत कुछ कहना मुश्किल है। लेकिन मनु के कुछ शब्द ऐसे हैं कि ऐसा लगता है कि मनु हिंदुस्तान में ब्राह्मणों का राज्य कायम करने में पूरी तरह सचेष्ट हैं। उनके शब्द ऐसे हैं। उनकी बात ऐसी है वह निश्चित रूप से शूद्र को खड़ा कर रहे हैं और ब्राह्मण को सिर पर बिठा रहे हैं। और वह सारा का सारा वर्ग विभाजन और वर्ण व्यवस्था खड़ी कर रहे हैं। तो मनु तो निश्चित ही हिंदुस्तान में एक विप्र साम्राज्य खड़ा करने का पूरा... ।

प्रश्नः कैटेगरी कर रहे हैं।

कैटेगरी लेकिन आज बहुत मुश्किल हो जाता है क्योंकि चार हजार साल पहले, तीन हजार साल पहले कब मनु हुए, आज बहुत मुश्किल हो जाता है। लेकिन जो भी मनु ने कहा है--इधर अभी नीत्शे ने मनु की बहुत प्रशंसा की, सिर्फ इसलिए कि नीत्शे को अपनी आवाज की ध्वनि मनु में मिली। नीत्शे ने कहा है, मनु है दुनिया का सबसे बड़ा लाग्यवर क्योंकि उसने यह बताया है, कि कुछ लोग बड़े हैं और सब लोग छोटे हैं। तो नीत्शे ने तारीफ की की। मनु की तारीफ करने वाला इधर तीन सौ वर्षों में सिर्फ नीत्शे है।
कोई आदमी तारीफ नहीं करेगा, लेकिन नीत्शे ने तारीफ की। और नीत्शे के आधार पर खड़ा हुआ फासिज्म पूरा का पूरा। तो मनु ने एक तरफ का फासिज्म खड़ा किया। ब्राह्मणों का। आज कहना मुश्किल है वह कितना सचेष्टा था कि आज तीन हजार साल के बाद बहुत मुश्किल... उसके व्यक्तित्व के बाबत हम बहुत नहीं जानते। लेकिन मनु स्मृति में जो शब्द है वह ऐसा बताते हैं। जैसा वह कहेगा-- एक ब्राह्मण को मार डालना एक हजार गायों को मारने का पाप है। एक गाय को मारना एक हजार साधारण मनुष्यों को मारने का पाप है। लेकिन एक शूद्र को मारने पर सिर्फ एक दिन का भोजन दे देना काफी है। यह जो माइंड है, यह जो फर्क कर रहा है, बड़ी अजीब बात है। एक शूद्र को मारने पर एक गऊ के मारने का भी पाप नहीं है। लेकिन एक ब्राह्मण को मारना... ! एक ब्राह्मण अगर शूद्र की औरत को ले आए तो क्षम्य है लेकिन ब्राह्मण की और को अगर शूद्र ले जाए तो जन्म-जन्म तक क्षम्य नहीं है। यह जो माइंड है न, नहीं जानकार होने के बाबत कुछ करना मुश्किल है लेकिन मनु का माइंड बहुत साफ कांसपिरेटर का माइंड है, षडयंत्रकारी का माइंड है वह।

प्रश्नः यह तो माना कि वह गुलामी समाज रचना थी।

कैटेगेरेकली। जैसे चोरों की हमेशा निंदा करते रहा है धर्म, लेकिन शोषण की कभी निंदा नहीं की हैं किसी धर्मग्रंथ ने आज तक। चोरी की निंदा करते रहे हैं धर्मग्रंथ की चोरी मत करो क्योंकि चोरी है गरीब का कृत्य अमीर के खिलाफ। क्योंकि चोरी तो वह करेगा जिसके पास नहीं हैं और उससे करेगा जिसके पास है। तो चोरी के लिए तो सारी दुनिया के धर्मग्रंथ कहते हैं कि यह पाप है बुरा है। लेकिन कोई धर्मग्रंथ यह नहीं कहता कि संपत्ति का इतना इकट्ठा करना पाप है बुरा है बल्कि वे कहते यह है कि संपत्ति मिलती पुण्य से है। जिसको मिली है संपत्ति उसको पुण्य से मिली है। तो संपत्ति वाले के लिए उनकी दृष्टि है कि वह पुण्यात्मा है इसलिए उसे संपत्ति मिली है और चोरी करने का विरोध है।
यह जो माइंड है चोरी का विरोध करने वाला और शोषण के संबंध में एक शब्द
भी विरोध में नहीं कहेगा--यह जो माइंड है... मैं जानता हूं, यह बात सच है कि दो हजार साल पहले यह माइंड पैदा भी नहीं हो सकता था। आप ठीक कहते हैं कि जब उत्पादन के साधन इतने विकसित होंगे, तो आज हम कह सकते हैं वह दो हजार साल पहले कहा भी नहीं जा सकता था। लेकिन वह जो दो हजार साल पहले कह गया था, अगर आज भी हम उसे कहे चले जाते हैं तो क्रांति में बांधा पड़ने वाली है। यह जिम्मा इतना नहीं है कि बुद्ध और महावीर और क्राइस्ट और कृष्ण को हम जिम्मेवार ठहराए कि तुम शोषण करवा रहे हो। लेकिन जो कुछ उन्होंने कहा है,

उससे जो माइंड बना है, वह माइंड शोषण को जारी रखेगा। आज उस माइंड को बिना बदले हुए आप कोई क्रांति नहीं ला सकते।
फिर जो उत्पादन की व्यवस्था है, वह भीतर भी अगर आप गौर से समझेंगे तो उत्पादन की व्यवस्था भी आसमान से पैदा नहीं होती है। वह भी मानसिक व्यवस्था से पैदा होती है। आपने क्यों इंडस्ट्रियल क्रांति नहीं कर ली हिंदुस्तान में? वह यूरोप में क्यों हो गई? आपका जो माइंड है वह माइंड कभी इंडस्ट्री पैदा करने वाला नहीं रहा। आपको जो मेकअप है माइंड का... पश्चिम में क्यों संपत्ति इतनी जोर की इकट्ठा हो गई अमरीका के पास? आपके पास क्यों नहीं हो सकी? आपका जो माइंड है वह दरिद्रता को आदर देने वाला है, वह संपत्ति को कभी उसने आदर दिया नहीं। उसके मन का भाव यह है कि संपत्ति तो कोई जरूरी बात नहीं है। आदमी तो जितना कम से कम में गुजार दे उतना अच्छा है। जिस कौम का दिमाग यह होगा कि जरूरत कम करो, और वह कभी संपत्ति पैदा नहीं कर सकती। और जब संपत्ति पैदा करने की धारणा ही पैदा न हो तो हम बड़ा उत्पादन की व्यवस्था और मैकेनाइजेशन और सेंट्रलाइजेशन वह कैसे करेंगे? और वही प्रपीच्चल, वही बात गांधी फिर दोहराए चले जा रहे हैं। जब वे चरखे पर जोर देते हैं तो वह भारत की पुरानी जड़ता है, वह जो दरिद्रता को बनाए रखने की, उस पर फिर जोर दे रहे हैं क्योंकि चर्खा कभी भी किसी मुल्क को संपत्तिशाली नहीं बना सकता है। चर्खे से कोई मुल्क संपत्तिशाली नहीं बन सकता है।
सवाल यह है, हम जिस माइंड की, जिस मेकअप की जो साइकोलॉजिकल फ्रेम है हमारे दिमाग का, हिंदुस्तान का ऐसे जैसे फ्रेम ऐसा है कि उसे फ्रेम से संपत्ति नहीं पैदा की जा सकती। तो हम दरिद्र रहेंगे उस फ्रेम को हमें तोड़ना पड़ेगा। हमें कहना पड़ेगा कि कम जरूरतें कोई आदर की बात नहीं है। क्योंकि जरूरतें बढ़े तो आदमी श्रम करता है। और सोचता है कि हम जरूरतों को कैसे पूरा करें? अमरीका आसमान से अमीर नहीं हो गया। तीन सौ वर्षों में उन्होंने जो फिलॉसफी पकड़ी है जरूरत को बढ़ाने की, उससे संपदा पैदा हुई है। हम पांच हजार वर्ष से जो फिलासफी पकड़े है जरूरत को कम करने की, उससे दरिद्र हुए हैं। मेरा कहना है, उत्पादन की व्यवस्था में जो क्रांति होती है, वह भी बहुत बुनियाद में आपके मन से आती है।
आपके मन का ढांचा अगर ऐसा है... जैसे कि यहां रह रहे हैं, बंबई में भी एक आदमी रह रहा है, वहीं पास के एक पहाड़ी में एक आदिवासी रह रहा है। वे दोनों एक ही सेंचुरी में रह रहे हैं। अमरीका में एक आदमी रह रहा है, अफ्रीका में एक आदमी रह रहा है, हम सभी बीसवीं सदी में रह रहे हैं। बस्तर में कोल भील रह रहे हैं, ये सभी इसी सदी में रह रहे हैं जिसमें हम और आप रह रहे हैं। लेकिन यह कोल भील बस्तर का समृद्ध क्यों नहीं हो सका। यह धनी क्यों नहीं हो सका? इसके माइंड का जो फ्रेम है, वह इसको कभी समृद्ध नहीं होने दे सकता है। यह और दस हजार साल ऐसे ही रहेगा, इसमें कोई फर्क नहीं आने वाला है जब तक कि हम इसका मन का फ्रेम नहीं बदल देते। हिंदुस्तान में भी जो आज आपको थोड़ी बहुत प्रगति दिख रही है वह सिर्फ गुलामी का फल है आपको, इससे ज्यादा नहीं। नहीं तो आप दो सौ साल पहले जिस हालत में थे आप उसी हालत में होते। आपका फ्रेम ऐसा दिमाग का। बड़े मजे की बात यह है कि अभी हमको जो थोड़ा बहुत गति दिखाई पड़ रही है सोचने में वह सारी की सारी गति पश्चिम से हम पर आई है। सारी गति हम पर पश्चिम से आई है। और नहीं तो हम चरखे ही कात रहे होते और बैलगाड़ी में ही चल रहे होते। अगर पश्चिम का इम्पैक्ट न हो हिंदुस्तान पर, तो हिंदुस्तान की जो फिलॉसफी थी, वह इतनी जड़ थी और उसकी इतनी पुरानी परंपरा थी कि उसको हिलाना मुश्किल था। यह जो थोड़ी बहुत हिलावट पैदा हुई वह सिर्फ इसलिए की पश्चिम के संपर्क ने एक नई फिलासफी से हमारा संपर्क जोड़ा और हमें पहली दफा दिखाई पड़ा कि अगर यही फ्रेम वर्क में जीते चले आते हैं तो कभी समृद्ध नहीं हो सकते। कोई उपाय नहीं है हमारा।

प्रश्नः अगर आप आने वाले भी, यहां नहीं थे, और मुझे बुलाने वाले भी नहीं थे तो यह तो... ?

आप यहां आ गए है। मार्क्स के कहने से कोई सत्य नहीं हो जाती कोई बात।
आप यहां आ गए हैं तो आने के पहले यह भौतिक परिवर्तन हुआ आपका शरीर का यहां तक आना। लेकिन आने के पहले आपने आना चाहा है क्योंकि डिजायर पहले आ गई है, वह मेंटल फर्क है। आप यहां कैसे आ सकते हैं फिजिकली? एक मशीन ईजाद होती है...
फिजिकल घटना हमेशा पीछे है। जो भी जीवन फर्क आता है। उसके पहले माइंड कंसीव करता है। सीड में, बीज में उसको। उसके बाद वे फर्क होने शुरू होते हैं। अगर मार्क्स ने भी कुछ किया है और कहा... अब थोड़ा देखें, फिजिकल कम्युनिज्म तो मार्क्स के मरने के बहुत दिन बाद रूस में आया है। लेकिन मेंटल कम्युनिज्म मार्क्स को उसे पचास साल पहले और किसी को पता भी नहीं था कि एक आदमी ब्रिटिश म्यूजियम में बैठ कर कम्युनिज्म को जन्म दे रहा है। वह सड़क से निकलता था तो कोई नमस्कार करने वाला भी नहीं था उसको। कोई पूछने वाला भी नहीं था कि यह आदमी कौन है। यह आदमी माइंड में कम्यूनिज्म की पूरी तस्वीर खड़ी कर रहा है। इसने चालीस साल में कम्युनिज्म की पूरी तस्वीर खड़ी कर दी। यह आदमी मर गया तब भी किसी को पता नहीं था कि दुनिया का एक ऐसा आदमी मर गया है जिसको कि आज नहीं कल, पूरी दुनिया स्वीकार कर लेगी। उसे पचास चालीस साल बाद रूस में फिजिकली घटना घटी कि कम्युनिज्म आया। वह मार्क्स क्या कहेगा, मार्क्स के कहने से क्या होता है? कम्युनिज्म पहले आ गया मेंटली, और पीछे घटना घटी और तब वह आया। कोई भी घटना फिजिकल तल पर नहीं घट सकती जब तक माइंड में सीड पैदा नहीं होता है।

प्रश्नः लेकिन वह सब काम करने के बाद उन्होंने सोचा कि इसका अंतिम अंजाम... ?

सोचेगा पहले, होगा पीछे। और यह जो मैं कह रहा हूं न, माइंड को बदलने का मतलब यह है कि सोचने को हमें पहले बदलना पड़ेगा, फिर कुछ और बदलाहट हो सकती है। जो मैं चोट करता हूं कोई वह इसलिए कि वह जो सोचने का ढांचा है, उसमें थोड़ी भी दरारें पड़ जाए और सोचने का ढांचा बदल जाए तो शायद हम समाज के ढांचे को बदल दें। विचार की प्रक्रिया के परिवर्तन के बिना कोई सामाजिक परिवर्तन नहीं होता है। कोई सामाजिक परिवर्तन नहीं होता है।
आप हैरान होंगे, जिन दो लड़कों ने, राइट ब्रदर्स ने, जिन्होंने हवाई जहाज, उनका बाप एक बिशप था, पादरी था, और एक दिन चर्च में वह बोल रहा था। और वह जो लड़का पैदा होकर जहाज बनाएगा, वह पत्नी मौजूद थी, चर्च में वह सुन रही थी, वह उसके गर्भ में था। पहला जो बड़ा लड़का था वह गर्भ में था। वह बैठी हुई चर्च में सुनने आई। वहां घटना घटी, उस विशप ने यह कहा कि भगवान ने हर चीज बना दी है और अब कोई चीज बनाई नहीं जा सकती। सब चीजें गौण हो चुकी है। और उसने प्रश्न पूछा कि क्या तुम ऐसी एकाध चीज का नाम ले सकते हो जो अभी नहीं है, क्या कल तक हो जाएगी? हर चीज सदा से है। एक आदमी ने खड़े होकर कहा, जैसे हवा में उड़ना। तो वह हंसने लगा और सारी चर्च हंसने लगा। उन्होंने कहाः क्या पागल हो गए हो हवा में पक्षी उड़ते हैं आदमी कैसे उड़ेगा? यह कभी नहीं हो सकता। उसने कहा यह कभी संभव नहीं है कि आदमी हवा में उड़े। यह कैसे हो सकता है? बीस साल बाद उसके ही लड़के ने हवा में पहली दफा उड़ने का प्रयोग किया। और विशप राइट ने, उसके बाद अपनी डायरी में लिखा है कि मैं निंदित हूं अपनी आंखों के सामने। लेकिन यह घटना घट सकी, क्योंकि मेरा लड़का बाइबिल का मानने वाला लड़का नहीं है। यह घटना घट सकी क्योंकि मेरा लड़का बाइबिल को मानने वाला लड़का नहीं है। नहीं तो हर चीज बन चुकी है।
अगर यह उसके माइंड का फ्रेम-वर्क हो तो फिर कुछ इनवेंशन नहीं हो सकता। पश्चिम में जो इनवेंशन हुए तीन सौ वर्षों में, उसका कुल कारण इतना है कि पश्चिम के माइंड का जो फ्रेम वर्क था उसने यह मानना शुरू कर दिया कि अभी क्रिएशन समाप्त नहीं हो गया। आदमी को क्रिएशन करना है। भगवान ने वह काम पूरा नहीं कर दिया है। तीन सौ वर्षों में भगवान पर से, और भगवान की जो पुरानी धारणा थी उस पर से जो आस्था डिग्री तो उस डिगने की आस्था ने सारे माइंड को बदल दिया। उस माइंड में बदलाहट से नया सब-कुछ पैदा हुआ।

इस मुल्क में भी, अगर हम माइंड को बदलने की फिकर नहीं करते हैं और पुरानी लकीरों को पीटते चले जाते हैं और चिल्लाए चले जा रहे हैं कि ठीक कह रहे हैं फलां, ठीक कह रहे हैं फलां, ठीक है, सब बिल्कुल ठीक है, तो आप पक्का मानिए इस मुल्क के जीवन में कोई क्रांति, कोई परिवर्तन कोई नया आंदोलन नहीं हो सकता है। हमें माइंड पर चोट करनी पड़े। तो मैं जो फिकर करता हूं... मुझे उसकी फिकर नहीं है कि सामाजिक क्रांति हो या न हो। मुझे फिकर यह है कि मन में बीज में पड़ जाए तो आने वाले बच्चे क्रांति कर लेंगे, आपको इसकी फिकर करने की जरूरत नहीं। लेकिन बीच में हमारे दिमाग में खयाल ही नहीं है। अभी हमारे दिमाग में यह खयाल नहीं है इस मुल्क के कि शोषण पाप है। यह खयाल नहीं है हमारे दिमाग में। अभी भी खयाल नहीं है कि शोषण पाप है हम कहें उसे, जैसे हम चोरी को काफी पाप कहते हैं। ऐसे हम संपदा को भी चोरी कहें और पाप कहें वह हमारे मन में नहीं है।
मार्क्स के भी पहले प्रूधो ने कहा कि संपत्ति चोरी है। उस एक सूत्र पर सारा का सारा समाजवाद विकसित हुआ। संपत्ति मात्र चोरी है। वेल्थ इज थेफ्ट। यह एक छोटा सा सूत्र प्रूधो ने कहा। इस एक सूत्र पर पूरा कम्युनिज्म विकसित हुआ। यह छोटा सा सीड था। उसने यह कहा कि संपत्ति मात्र चोरी है क्योंकि बिना चोरी के संपत्ति इकट्ठा हो ही नहीं सकती। इस एक छोटे से सूत्र पर सारा का सारा कम्युनिज्म खड़ा हो गया। रूस और चीन एक छोटे से सूत्र पर खड़े हुए और आने वाले तीस चालीस वर्षों से सारी दुनिया में फर्क आ जाएगा और सबके पीछे प्रूधो का एक छोटा सा वचन है। और प्रूधो बिल्कुल साधारण सा आदमी था। यह कभी पता नहीं चलता दुनिया में कि प्रूधो नाम का एक आदमी था, वह एक वचन बोल गया कि यह जो संपत्ति है, चोरी है। एक दफा यह खयाल आ जाए कि संपत्ति चोरी है तो फिर समाज हमें ऐसा बनाना पड़ेगा जिसमें चोरी जैसी बुनियादी चीज न चलती रहे। बड़े चोरों और छोटे चोरों का फर्क है। बड़े चोर संपत्तिशाली हैं, छोटे चोर जेलों में हैं, सजा काटते हैं। छोटा चोर फंस जाता है, बड़ा चोर मालिक है। और बड़ा चारे पुण्यात्मा है और छोटा चोर पापी है।
तो जब तक हमारे दिमाग में यह खयाल चलता रहेगा तब तक यह व्यवस्था नहीं बदलती है। तो मेरा आग्रह इतना ही है कि किसी भी भांति यह मन की जड़ता हिल जाए; इसके तंतु यहां-वहां उखड़ जाए और एक बार हम फिर सोचने की विचार करने लगें कि सोचें कि हम फिर से कि सच, असलियत क्या है तो शायद कोई बीज निर्मित हो जाए। और कोई बात नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मेरे मन में खयाल है कि सारे मुल्क की मानसिक रचना की आमूल बदला जाए।
तो उसके लिए जगह-जगह केंद्र खड़े किए जाए, युवक संगठन खड़े किए जाए और मुल्क की जो जड़ता है, चिंतन के मामले में कि रुक गया है, डारमेंट हो गया है कहीं, उसका बहाव नहीं रहा। वह बहाव खोल दिया जाए पूरी तरह से। सारा भय छोड़ कर विचार की मुक्त धारा बहा दी जाए--जो भी परिणाम हों। तो उसके लिए तो प्रेस बहुत सहयोगी हो सकता है। क्योंकि आज तो सब तक बात पहुंचाने में प्रेस के अतिरिक्त और क्या सहयोगी हो सकता है? तो यह जो दृष्टि है वह लोगों तक पहुंचा दी जा सके, लोगों को आमंत्रित किया जा सके प्रेस के द्वारा कि वे इस डिस्कस कर सकें... मेरी बात सही है यह मान लेने की कोई जरूरत नहीं। मेरा काम इतना काफी हो जाता है कि एक प्रालब्ध भी उठा लूं तो बात हो गई। मैं एक प्रश्न उठाऊं तो उस पर आप निमंत्रण भेज सकते हैं कि लोग डिस्कस करें। आप फौरन खड़ा कर सकते हैं, परिचर्चा चला सकते हैं अखबारों में, पक्ष-विपक्ष में लोग सोचें।
अभी जैसे बंबई में सेक्स पर मैं बोला हूं, तो उसका पूरा सारभूत आप दे सकते हैं अखबारों में, आप निमंत्रण दे सकते हैं कि लोग उनके पक्ष-विपक्ष में पत्र लिखें, डिस्कस करें। मैं हमेशा तैयार हूं कि आखिर में जबाब देने को तो उनका जवाब दूं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

ठीक कहते हैं, एकदम ठीक-ठीक कहते हैं। चौदह साल की उम्र तक कपड़ों में ढांकना बच्चों के साथ बहुत बड़ा अपराध है। तेरह-चौदह साल तक जब तक सेक्स मैच्योरिटी नहीं आती, बच्चों को जितना नंगा रखा जा सके है। उतना हितकर है। उतना ही बाद में उनके जीवन में शरीर के प्रति जो एक पागल आकर्षण पैदा होता है वह नहीं पैदा होगा। नंगी तस्वीरों को देखने का जो मोह पैदा होता है वह नहीं पैदा होगा। सारा अश्लील साहित्य मर जाए जिस दिन हम बच्चों को चौदह साल तक नंगा रख लें उसके बाद अश्लील साहित्य बिक नहीं सकते। कोई खरीदने को नहीं मिलेगा।

प्रश्नः अश्लील साहित्य क्या पहले नहीं था।

अश्लील साहित्य नहीं था, उनके पास वेश्याएं थीं। मेरा मतलब यह है कि
उस समाज के पास जिस समाज की आप... आज भी लोग उस समाज के जिंदा हैं जंगलों में आज भी उस समाज के आदमी के मन में अश्लीलता नहीं है, सेक्सुअलिटी नहीं है, सेक्स है, सेक्सुअलिटी नहीं है। परवर्शन नहीं है और एक आदिवासी स्त्री का स्तन आप छूकर पूछ सकते हैं कि यह क्या है तो वह कहेगी, दूध पिलाती हूं इससे बच्चे को। बात खत्म हो गई। इससे ज्यादा कोई सवाल नहीं है, बात खत्म हो गई। लेकिन अभी सभ्य स्त्री की स्तन की तरफ आप देखें तो बेचैनी शुरू हो गई। वह भी बेचैन है कि आप देख न लें और आप भी बेचैन हैं कि आप देख लें और वह छिपा भी रही है आपसे। वह छिपा भी रही है कि इसे छिपा ले। और इस तरह के कपड़े भी पहन रही है कि वह दिखाई पड़े यह परवर्शन है। वह एक आदिवासी स्त्री का परवर्टेड माइंड नहीं है।

प्रश्नः चौदह साल के बच्चों की नग्नता... ।

आपकी जो नग्नता के प्रति धारणा है वह गई। आपके घर में अपने बाथरूम में सारे लोग घर का सारा परिवार नंगा होकर नहा सकता है और किसी को भी खयाल भी नहीं न आए। नदी के घाट पर आप नंगे स्नान कर सकते हैं, किसी को खयाल भी न आए। और होना नहीं चाहिए। समाज इतना सभ्य इतना सुसंस्कृत तभी माना जाएगा जब वह नग्न खड़े आदमी के प्रति भी साधारण भाव रखता हो। नहीं तो सुसंस्कृत नहीं है वह आदमी, अनकल्चरड है, वह आदमी असंस्कृत हैं। यह तो चौदह साल एक दफा हो जाए तो बड़े बूढ़े के लिए प्रालब्ध नहीं रहा। कपड़े आप पहनेंगे शौक से, जब जरूरत हैं। नहीं तो कोई जरूरत नहीं है। अगर नहीं जरूरत हो, तो आप नंगे बैठने का अपना आनंद है, अपना सुख है, अपना अर्थ है। लेकिन आदमी नंगा होने में घबड़ा जाए, वह खतरनाक बात है। किसी को नंगा बैठना चाहिए, यह मैं नहीं कहता, लेकिन नंगा बैठने में कोई खतरा नहीं है। वह स्थिति तो मन की बननी चाहिए। और वह बच्चों को अगर नंगा रख सके तो वह स्थिति क्योंकि बच्चे कल बड़े होंगे। जो बच्चा चौदह साल तक नंगा घूम सका वह बच्चा चालीस साल का होकर बगीचे में नंगा बैठ कर काम कर सकता है। उसको कोई परेशानी नहीं होने वाली है। परेशानी तो इसलिए हो रही है कि चौदह साल का, चार साल का तभी, नंगे मत हो जाना, जल्दी कपड़ा पहनो। मुसीबत तो उसको एक ऐसा फियर काम्पलेक्स पैदा कर दिया कि कपड़े नहीं पहनना, मतलब कोई ऐसा भारी अपराध है कि तुम गड़गड़ न करो।
नग्नता का अपना सुख है, अपना आनंद है, अपना स्वास्थ्य है। और सच तो यह
है कि जब तक हम मनुष्यता को फिर से नग्न रहने की थोड़ी व्यवस्था नहीं करते तब तक मनुष्यता का पूरा स्वास्थ्य वापस नहीं लौटेगा। पूरा स्वास्थ्य कभी वापस नहीं लौट सकता। कपड़े पहन लेता है आदमी तो वह भूल ही जाता है शरीर की फिकर। कपड़े उसको काफी ऐसा दिखने लगते हैं कि ठीक था। अभी आज हम सारे लोग को नंगा खड़ा करें तो आपको पहली दफा अपने शरीर का खयाल आएगा कि यह क्या बात है, यह कैसा शरीर है! यह शरीर बरदाश्त करने जैसा नहीं होगा, अगर आप नंगे खड़े हों।

प्रश्नः चंद्रकांत भाई का जवाब देंगे क्या?

हां, तो अभी एक ही मेरे मन में खयाल है कि सारे मुल्क के कोने-कोने से
एक वैचारिक क्रांति, फिर एक युवक संगठन खड़ा करने का है, बिल्कुल एक सैन्य ढंग पर युवक संगठन पूरे मुल्क में।

प्रश्नः क्या आपको पॉलिटिक्स से भाग लेने का है?

न, पॉलिटिक्स में भाग लेने का नहीं हूं, लेकिन मुल्क की जिंदगी में भाग लेने का है। उसमें पॉलिटिक्स भी है। पॉलिटिक्स में भाग लेने का नहीं है। लेकिन मुल्क की पूरी जिंदगी में भाग लेने का मन है। उसमें धर्म भी है, उसमें पॉलिटिक्स भी है, उसमें एजुकेशन भी है, उसमें एकोनामिक्स भी है। पॉलिटिक्स में मेरी रुचि नहीं है, लेकिन मुल्क की पूरी जिंदगी मेरी रुचि है और उसकी जिंदगी में पॉलिटिक्स भी है। तो मुल्क की जिंदगी को जहां-जहां पॉलिटिक्स छूती है, वहां कोई उससे भाग कर और डरने वाला मेरा मन नहीं है कि उससे कोई भागता है। जो उसमें भी जरूरी लगे, उसके फर्क के लिए हमें फिकर करनी है। उसकी जरूर फिकर करनी है। तो एक यूथ फोर्स खड़े करने का है पूरे मुल्क में--युवक का, युवतियों का। वह एक सामाजिक क्रांति के लिए एक भूमिका बनाने के लिए कि दस साल में अगर कोई सामाजिक क्रांति खड़ी करनी हो तो हमारे पास एक शक्ति भी होनी चाहिए, जो पीछे बल दे सके। जो कह सके कि हां इस क्रांति को हम ताकत देते हैं।
तो एक तो यूथ फोर्स के लिए जोर से विचार है। दूसरा, एक गांव-गांव, बड़े- बड़े नगरों में फिलहाल छोटे-छोटे आश्रम खड़े करने का मेरा खयाल है। जहां जिसको मैं ध्यान कह रहा हूं, उस ध्यान के सतत प्रयोग चल सकें। कुछ संन्यासियों का एक नया आर्डर खड़ा करने का खयाल है, ऐसे संन्यासी का जो किसी धर्म का नहीं होगा। जिसका किसी किताब के प्रति कोई आग्रह नहीं होगा और जो न हिंदू होगा, न मुसलमान होगा, न जैन होगा। वह सिर्फ संन्यासी होगा। और धर्म क्या है, उसकी खबर वह ले जाएगा। और मेरी दृष्टि में, धर्म का अर्थ जो सारे जीवन को छू ले। उसमें शिक्षा भी है, राजनीति भी है। उसमें दांपत्य भी है, उसमें सेक्स भी है। धर्म का मेरा मतलब यह है कि वह फिलॉसफी पूरे लाइफ की, पूरे जीवन को छू ले। तो एक संन्यासी का आर्डर जल्दी खड़ा करने का है कि पांच सौ संन्यासी पूरे मुल्क में गांव-गांव भेजे जा सके जो जाकर वहां खबर ले जाए और एक हवा पैदा करें और दस साल में एक मूवमेंट खड़ा किया जाए कि हम समाज की जिंदगी में जो भी फर्क लाना चाहते हों उनके लिए ताकत दी जा सके कि वह फर्क पैदा हो सके।

प्रश्नः यह सब चलाने के लिए जो पैसा आएगा सार्वजनों से... ।

बिल्कुल भी नहीं होगा। यह तो मेरे विचार जिस पसंद है वह तो उनके लिए सहायता पहुंचा रहा है। न इससे स्वर्ग का आश्वासन है उसको, न पुण्य का आश्वासन है उसको। ज्यादा से ज्यादा इतना है कि उसने जो गलत किया है उसका पश्चात्ताप है। इससे ज्यादा नहीं है इसमें कोई अर्थ।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

इसकी बहुत फिकर नहीं है। मेरी फिकर यह है... एक तो कंट्रोवर्सियल वे हैं नहीं, जो भी मैं कह रहा हूं। वे दिखाई पड़ सकती है क्योंकि जिंदगी कंट्रोवर्सियल है। जिंदगी इतनी पैराडाक्सिकल है, उसके इतने पहलू हैं कि जब एक पहलू से हम कुछ बातें करें और दूसरे पहलू से बात करें, तो अक्सर हम दोनों में मेल नहीं बिठा पाते। लेकिन मैं कोई कंट्रोवर्सियल बात नहीं कर रहा हूं। जब भी मुझ से पूछा जाए तो मैं तैयार हूं। तो वह कंट्रोवर्सियल नहीं है। जैसा अभी आपने पूछा कि दान का मैंने यह कहा और दान का मैंने यह कहा। मेरे लिए कंट्रोवर्सी नहीं है बात। लेकिन मेरी बात सुन कर यह खयाल

पैदा हो सकता है। पर मैं सोचता हूं कि अगर खयाल भी पैदा हो जाए तो अच्छा है क्योंकि फिर आप पूछते हैं, विचार चलते हैं। वह तो निपट जाएगा, वह तो हल हो जाएगा।
और यह भी मैं फिकर नहीं करता कि जो मैं कहूं वह अगर लोगों की मान्यता
के विपरीत पड़ता है तो वे मुझसे दूर चले जाएंगे। अगर मैं, जो कह रहा हूं वह ठीक है तो वे आज दूर जाएंगे, पास आ जाएंगे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता लेकिन उनको देख कर मैं कुछ नहीं कह सकता हूं कि वे पास आए, क्योंकि वह बेईमानी है। अगर कोई बात करूं सिर्फ इसको खयाल रख कर कि आप मेरे पास आ जाए तो फिर वह बेईमानी है। और फिर... फिर यह असत्य का धंधा होगा पूरा का पूरा क्योंकि आप किसके पास आएंगे वह अगर चिंतन है, तो फिर बड़ी कठिनाई की बात है। तो मैं तो मुझे जो ठीक लगता है वह कहे चला जाऊंगा। कौन पास आता है, कौन दूर जाता है वह भगवान पर छोड़ दूंगा समझ मेरी इतनी है कि अगर किसी बात में कोई भी सचाई है तो लोग उसके पास आज नहीं कल आ जाते हैं। अगर सचाई नहीं है तो आना भी नहीं चाहिए। वह बात अपने आप मर जाएगी। या तो मेरी बात मर जाएगी तो मर जाना चाहिए अगर वह सच नहीं है। और अगर सच है तो मैं मानता हूं कि इतना मुल्क नहीं मर गया है कि लोग सच के करीब नहीं आ पाएंगे। इतना नहीं मर गया है कोई वह तो करीब आ जाएंगे। दोनों हालतों में कोई फर्क नहीं पड़ता।

जीवन आलोक
चौथा प्रवचन

नाचो--समग्रता है नाच

धर्म हमारा सर्वग्राही नहीं है। वह जवान को आकर्षित ही नहीं करता है।
जब आदमी मौत के करीब पहुंचने लगे तभी हमारा धर्म उसको आकर्षित करता है। इसका मतलब यही है कि धर्म हमारा मृत्योन्मुखी है। मृत्यु के पार का विचार करता है, जीवन का विचार नहीं करता है। तो जो लोग मृत्यु के पार जाने की तैयारी करने लगे वे उत्सुक हो जाते हैं। ठीक है उनको उत्सुक हो जाना। उसके लिए भी धर्म होना चाहिए। धर्म में मृत्यु के बाद का जीवन भी सम्मिलित है लेकिन इस पार का जीवन भी सम्मिलित है और उसकी कोई दृष्टि नहीं है।
और ऐसे ही मैं मान नहीं सकता कि बच्चों के लिए वही धर्म काम का हो सकता
है जो बूढ़ों और वृद्धों के लिए है। बच्चों का तो जो धर्म होगा वह इतना गंभीर नहीं हो सकता है। वह तो खेलता, कूदता, हंसता हुआ होता है। बच्चों का ऐसा धर्म चाहिए जो उनको खेलने के साथ धर्म आ जाए, वह उनकी प्लेफुलनेस का हिस्सा हो। वह मंदिर में जाते हैं और बच्चे, वह तो वहां भी शोरगुल करना चाहते हैं। हम उनको डांट कर चुप बैठा देते हैं। और उसका परिणाम यह होता है कि बच्चों को यह समझ में ही नहीं आता है कि यह क्यों कर दबाया जा रहा है, क्योंकि चुप किया जा रहा है, और बचपन से ही मंदिर कोई अच्छी जगह नहीं है, यह भाव पैदा होता है बच्चों मन में। वहां कोई खेलना है, कूदना है, आनंदित होना है--वह नहीं है वहां।
फिर जवान आदमी को भी धर्म कुछ ऐसा मालूम पड़ता है वह जीवन-विरोधी है। न वहां प्रेम की आज्ञा देता है, न वहां काम की तृप्ति के लिए कोई विचार और दृष्टि देता है। न वह शरीर के सौंदर्य और शरीर के रस के लिए संभावना देता है। और जवान के पूरे प्राणों में अभी जो पुकार है वह सौंदर्य की है प्रेम की है, धर्म उसकी पुकार को किसी तरह कोई उतर नहीं देता, कोई रिस्पांस नहीं देता। तो वह सिनेमा जाता है, वह वहां जाता है जहां उसको उत्तर मिल सकता है। और वह सब गलत उत्तर है। मेरा कहना है, मंदिर से उसे उत्तर मिलना चाहिए। मगर वह हम मंदिर न बना सके जो सारे जीवन को घेरता हो, न वह हम धर्म खड़ा कर सके। तो इधर तो मेरी पूरी चिंतना बस बात पर लगी हुई है कि हम जीवन के पहले दिन से लेकर अंतिम विदा के क्षण तक समग्र जीवन को उसके आमूल, इकट्ठे रूप में सोचें और सारी चीजें जो जीवन में हैं वे धर्म के संबंध में हों। तो मुझे दिखाई पड़ रहा है कि एक तरह की धार्मिक चिंतना सारे जगत में और सारे मनुष्य के लिए उपयोग हो सके। उसमें सेक्स के लिए बहुत अनिवार्य जगह बनानी पड़ेगी। अभी तो कोई जगह ही नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

कोई सवाल ही नहीं है। यानी मेरा कहना यह है कि विवाह जो है ऐसा नहीं होना चाहिए कि हिंदू का धर्म, मुसलमान का धर्म, ऐसा हॉरिजेंटल नहीं, वर्टिकल होना चाहिए--बच्चे का धर्म, जवान का धर्म, बूढ़े का धर्म। वह जो विभाजन होगा वह ऐसा होना चाहिए--नीचे से ऊपर की तरफ। उस विभाजन में तो कोई वैज्ञानिकता का मतलब होता है।
हिटलर जैसे हुकूमत में आया तो उसने क्या किया आते से ही? उसने कहा, अब बच्चों को हम खेल-खिलौने, गुड्डा-गुड्डी यह नहीं बनाने देंगे। तोपें बनानी चाहिए, बंदूकें बनानी चाहिए खिलौने की जगह। और बच्चे की पहले दिन भी उसके झूले पर लटकानी हो तो तोप लटकानी है। क्योंकि हमें सैनिक बनाना है, तो उसकी आत्मा को साक्षात्कार करनी होगी, वह उसके खेल का हिस्सा हो जाएगा। पहले वह तोप से खेले, कल वह फिर तोप चलाना खेल समझेगा। उसमें कोई बाधा नहीं रह जाएगी। आज खेलेगा तोप से, कल तोप चलाने को खेल समझ पाएगा। वह उसकी जिंदगी का हिस्सा हो जाएगी। उसे कभी कल्पना भी नहीं उठेगी।

प्रश्नः जैसे अभिमन्यु?

हां, पहले से जो भी हमें बनाना है जीवन को। अगर हमें जीवन को एक धार्मिक जीवन बनाना है तो बच्चे के पहले दिन से उसकी शुरुआत हो जानी चाहिए। और यह असंभव है कि बच्चे अधार्मिक हों, जवान अधार्मिक हों बूढ़े अचानक धार्मिक हो जाए यह संभव है। क्योंकि बूढ़ा होना तो उसकी फ्लॉवरिंग है, उसी से निकलेगा। तो अगर बच्चे धार्मिक नहीं हैं, जवान धार्मिक नहीं हैं तो बूढ़े झूठे धार्मिक होंगे, मेरा कहना है। वे कभी सच्चे धार्मिक नहीं होंगे। सारे जीवन का आधार अधार्मिक होगा। और फिर अचानक एक दिन मौत को सामने देख कर वे घबड़ा जाएंगे और प्रार्थना करने लगेंगे। उस प्रार्थना का कोई बहुत मूल्य नहीं है।

प्रश्नः आप बच्चों के लिए कैसा धर्म चाहते हैं?

हिंदू का नहीं--हिंदू-मुसलमान को तो मैं पागलपन समझता हूं। धर्म यानी धर्म। जैसे विज्ञान, गणित यानी गणित, कोई गणित पूरब का अलग, पश्चिम का अलग, हिंदू का अलग, मुसलमान का अलग, ये पागलपन की बातें हैं। गणित अगर सही है तो एक होगा, गलत है तो कई तरह का हो सकता है। वैसे ही धर्म यानी धर्म। आत्मा के, परमात्मा के पाप के जो भी नियम हैं, जो सार्वलौकिक नियम हैं उनको मैं धर्म का नाम देता हूं।
बच्चे के धर्म से मेरा मतलब है कि बच्चे का जो रुझान है--जैसे बच्चा खेलना चाहता है, कूदना चाहता है। मेरा कहना है, खेलने और कूदने के साथ ध्यान को जोड़ा जा सकता है--मेडिटेशन इन एक्शन। बच्चा कवायद कर रहा है।

प्रश्नः हमारे आश्रम में तो विभाजन था!

काहे में है? हमारे जो आश्रम का विभाजन था, चार विभाजन में हमने आदमी
को तोड़ दिया हुआ था। जो पहले पच्चीस वर्ष के थे उसको हम ब्रह्मचर्य की शिक्षा देते थे और मेरा कहना है कि पहले पच्चीस वर्ष काम की शिक्षा दी जानी चाहिए; सेक्स की, ब्रह्मचर्य की नहीं बेहूदी बात है। सेक्स की परिपूर्ण शिक्षा से ब्रह्मचर्य निकल सकता है। और ब्रह्मचर्य की शिक्षा से सिर्फ सेक्स का सप्रेशन होता है, और कुछ नहीं होता है। और सप्रेस्ड व्यक्ति खतरनाक व्यक्ति है और हजार रोगों का आमंत्रण है उसमें। मेरे में जो फर्क हैं, मैं पच्चीस वर्ष को मानता हूं जैसे ही व्यक्ति सेक्सुअलॉजी मेच्योर हुआ--लड़का या लड़की, उसको पूरे काम-काज करके सेक्सुअली की पूरी शिक्षा देनी चाहिए और वे सारी सत्य बातें कह देनी चाहिए जो कि सत्य हैं, लेकिन झूठी शिक्षाएं उनको गलत बातें सीखा रही हैं। सारी दुनिया के अनुभव, वैज्ञानिक शिक्षण यह परिणाम होते निकाली। जैसे ही बच्चा दस-बारह साल को पार किया, उसके जीवन में सेक्स की नई घटना उठ रही है। उस घटना के बाबत सत्य--नैतिक आधार पर नहीं, वैज्ञानिक आधार पर, हम क्या चाहते हैं उस हिसाब पर नहीं, मनुष्य कैसा है उस हिसाब पर पूरी शिक्षा और मनुष्य के सहज स्थिति की स्वीकृति।
पुराने धर्म में उसकी स्वीकृति नहीं थी। चीजों की स्वीकृति नहीं थी
जो हमारे भीतर हैं। उसकी निंदा है, उसका विरोध है, उनको तोड़ डालना है बदल डालना है। इसीलिए तो हमने पाखंडी समाज पैदा कर लिया। क्योंकि जो वास्तविक है उसकी स्वीकृति नहीं है। तो आदमी वास्तविक को भीतर दबा लेता है और जो वास्तविक है नहीं उसकी खोल ओढ़ लेता है ऊपर से क्योंकि आप कहते हैं कि ऐसा होना चाहिए। अगर संन्यासियों के पास घूम फिर कर अध्ययन करें--और वैज्ञानिक अध्ययन कभी कुछ होता नहीं। आमतौर से जिन संन्यासियों को स्त्री का साथ नहीं मिला, उनमें होमोसेक्सुअलिटी पैदा हो जाने वाली है, मैं कह रहा हूं, ब्रह्मचर्य की शिक्षा का सवाल नहीं है, सवाल है काम की और सेक्स की शिक्षा का। आपके उस आश्रम में जिसको आप ब्रह्मचर्य आश्रम कहते थे, सेक्स की कोई शिक्षा कभी नहीं दी गई थी, सिवाय सेक्स की निंदा के और

विरोध के; इससे ज्यादा कोई शिक्षा कभी नहीं दी गई थी। न आपका कोई शास्त्र बताता है कि क्या शिक्षा आप देते थे।
उसे हमने ब्रह्मचर्य का नाम दिया था, वह इसलिए ही दिया था।

प्रश्नः शिक्षा के लिए?

शिक्षा के लिए नहीं, गृहस्थ की तैयारी के लिए क्योंकि दूसरा आश्रम गृहस्थ का है। वह ब्रह्मचर्य छोड़ेगा आखिर थोड़ी ही छोड़ देगा, फिर विद्या थोड़े ही छोड़ देगा! वह पहले आश्रम से दूसरे आश्रम का फर्क क्या है? दूसरे आश्रम का फर्क यह है कि वह ब्रह्मचर्य छोड़ेगा और कामुक जीवन में सम्मिलित होगा, जबकि लाइफ शुरू होगी उसकी। तीसरे जीवने में वह सेक्सुअल लाइफ छोड़ेगा और वन की तरफ उन्मुख और चौथे जीवन में वह वन में प्रविष्ट हो जाएगा। व्यवस्था जो थी वह यह थी कि पहले मैं वह तैयारी करेगा काम निमंत्रण की। दूसरे में काम का भोग कहेगा। तीसरे में काम भोग से जो बच्चा पैदा हुए हैं उनकी व्यवस्था जुटाएगा और चौथे में मोक्ष की यात्रा पर उन्मुख हो जाएगा। वह पूरी की पूरी व्यवस्था सेक्स से संबंधित है।
ब्रह्मचर्य का मतलब? ब्रह्मचर्य के काल में वह विद्याध्ययन करेगा। विद्याध्ययन ब्रह्मचर्य के काल का हिस्सा होगा, लेकिन साधना ब्रह्मचर्य की रहेगी। विद्या-अध्ययन भी जो है, वह भी विद्यार्थियों में आप क्या कराते रहे थे? विद्या-अध्ययन के नाम पर आप कराते क्या थे उसको? अगर उसको भी बहुत गौर से देखेंगे तो बहुत हैरानी होगी कि विद्या अध्ययन के नाम पर आप कराते क्या थे? विद्या अध्ययन के नाम पर धर्म के नाम पर रिचुअल सिखाते थे कि यज्ञ ऐसे करना, हवन ऐसे करना, पूजा ऐसी करनी यह सब सिखाते थे। धर्म तो कुछ सिखाया नहीं जाता था, रिचुअल सिखाया जाता था, कर्मकांड सिखाया जाता था विद्या के नाम पर।
दूसरी मजे की बात है कि जितना भी जो लोग वहां गुरुकुल में सम्मिलित होते थे, वह कोई पूरे समाज को छूने वाली व्यवस्था न थी शूद्र तो सम्मिलित हो नहीं सकता था, शूद्र तो वर्जित था। चंडाल वर्जित था। सम्मिलित होते थे ब्राह्मणों के लड़के और राजाओं के लड़के। तो ब्राह्मणों पौरोहित्य का काम सिखाते थे शिक्षा के नाम पर कि वे पुरोहित कम बनें और राजा के लड़कों को युद्ध का काम सिखाते थे, सैनिक का काम सिखाते थे। कुल जमा सारी शिक्षा यही थी। अन्यथा अगर हमारे पास शिक्षा का कोई व्यवस्थित शास्त्र होता तो पांच हजार साल में पश्चिम हमारे आगे निकल जाता--तीन सौ वर्षों में? अगर हमने कोई विद्या की व्यवस्थित आयोजना की होती... तो हम पांच हजार साल से चिंतन कर रहे थे इस दिशा में, और हम कुल जमा यह समाज पैदा कर पाए जो हमारे पास है! आज हमारे पास सब कुछ उधार है। न तो एक मशीन है आपकी अपनी बनाई हुई, न आपके आप अपनी बनाई हुई एक दवा है, न आपके पास बुनाई हुई आलपीन है, और न हवाई जहाज है। आप पांच हजार वर्ष से विद्या का अध्ययन कर रहे थे, ब्रह्मचारीगण इकट्ठे होकर--यहां तक आपका विज्ञान विकसित हुआ, यहां तक आपकी समझ विकसित हुई! क्या विकसित हुआ?
तो विद्या के नाम पर पौराहित्य सिखाया जा रहा था। पौरोहित्य से विज्ञान नहीं निकलता। विद्या के नाम पर रिचुअल सिखाया जाता था, रिचुअल से कोई धर्म नहीं निकलता है। विद्या के नाम पर समाज का एक ढांचा था, उस ढांचे को कैसे कायम रखा जाए, इसका आयोजन किया जा रहा था। वह जो स्ट्रक्चर था वह टूट न जाए, उसकी पूरी आयोजना की जाती थी। क्षत्रिय का काम यह था कि ब्राह्मण की रक्षा करे और ब्राह्मण का काम यह था कि वह क्षत्रिय को प्रोत्साहन दे और वह कहे कि यह भगवान है। जिसको आप कहते हैं कि हमने बड़ी ऊंची समाज व्यवस्था बना रखी थी, नाम बड़े प्यारे हैं लेकिन उस समाज व्यवस्था के भीतर असलियत क्या थी, और सत्य क्या था? सत्य यह था कि राम जैसे अच्छे आदमी को भी शूद्र के कानों में शीशा पिघलवा कर डलवाने की हमने व्यवस्था की है, क्योंकि वह वेद सुन रहा था कान से। वेद नहीं सुन सकता है शूद्र। ऐसे हम विद्या गुणी थे कि शूद्र के कान में हमने शीशा पिघलवा कर डलवा दिया। और मजा यह है कि आज इस पूरे वेद को तुम पढ़ने को किसको कहो, तो पढ़

कर वह पाता है कि कुछ भी नहीं है। दस पंक्तियों को छोड़ कर सारा वेद व्यर्थ है। यानी कई दफे इतनी हैरानी होती है कि जिस वेद को तुम इतना सुरक्षित करते रहे थे, उसमें दस पच्चीस इंपार्टेंट पंक्तियां हैं, बाकी सब कबाड़ और कचरा है जिसमें कि कल्पना भी नहीं हो सकती कि इसमें धर्म का भी कोई संबंध हैं। एक दूध को दोहने वाला भगवान से प्रार्थना कर रहा है कि गाय के थन में ज्यादा दूध आ जाए--यह भी वेद में है। एक किसान कह रहा है कि हे भगवान वर्षा हो जाए, इंद्र भगवान वर्षा हो जाए मेरे खेत में--यह भी वेद में है। एक आदमी कह रहा है, मेरे शत्रु सब मर जाए--यह भी वेद में है। यह सब धर्म शास्त्र है। इसका अध्ययन कर रहे थे ब्रह्मचारी गण बैठ कर वर्षों तक!
विद्या के नाम पर क्या था? और गृहस्थ आश्रम के नाम पर आपने कौन सी साइंस विकसित की थी? यह विकसित किया आपने कि स्त्रियों को सती करवाया। यह विकसित किया कि पुरुषों को परमात्मा बनवा दिया और औरत को दासी बनवा रखा है इतने दिन तक। यह विकसित किया कि स्त्री की सारी शिक्षा छीन ली, सारी स्वतंत्रता छीन ली, सारा सामर्थ्य छीन लिया।

प्रश्नः मनु जी ने?

हां, वही तो गुरु, हमारे व्यवस्थापक थे। मनु हमारा एजुकेटर है। हमारे एजुकेटर दोनों थे, एक मनु और एक मैकाले। दो के अलावा इस मुल्क में कोई एजुकेट हुआ नहीं। एक मनु था, वह हमें बेवकूफ बना गया, दूसरा मैकाले हमें बना गया। और दो हमारे एजुकेट हैं और दोनों ने मिल कर सारे मुल्क के दिमाग को खराब कर रखा है।

प्रश्नः लेकिन बुद्ध ने भी तो पैंतालीस साल तक दिया?

जरूर, बुद्ध ने हिम्मत की तो बुद्ध टिक नहीं सके? आप समझिए न! बुद्ध ने हिम्मत की, सो बुद्ध कहां है। बुद्ध हिंदुस्तान में टिक न सके, पैर उखड़ गए यहां से।

प्रश्नः बुद्ध ने क्या किया?

बड़ी हिम्मत की। हिंदुस्तान में कोई क्रांतिकारी नहीं हुआ, ऐसा नई... लेकिन हिंदुस्तान की धारा ऐसी रही कि क्रांतिकारी के पैर यहां टिक नहीं सके। आज भी नहीं टिकते। आज भी पूरी धारा उखाड़ने की कोशिश करती है कि पैर टिक न जाए कहीं। आज भी हम कोई क्रांति उन्मुख समाज नहीं हैं, रिव्योलूशनरी समाज नहीं है हमारा और मेरा कहना है, जो समाज क्रांति उन्मुख नहीं है वह समाज मुर्दा है और मर चुका है क्योंकि क्रांति तो चाहिए रोज, हर पहलू पर।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

एक तो इस देश में कभी भी शरीर की बहुत चिंता नहीं की गई है और इसीलिए शरीर की दृष्टि से हम बहुत हीन और दीन हो गए हैं। तो बचपन में सबसे ज्यादा जोर तो शरीर स्वास्थ्य पर दिया गया है, सबसे ज्यादा जोर। कुछ भी मूल्यवान नहीं है उससे ज्यादा। यानी सब कुछ छोड़ा जा सकता है, लेकिन उसको नहीं छोड़ा जा सकता है। चाहे सारी शिक्षा छूट जाए तो कोई हर्जा नहीं। बहुत कीमती है, तो उसके शरीर को इतना मजबूत और बलवान बना दें। तो आने वाले पूरे जीवन में उसके शरीर के बाबत उसको विचार भी न करना पड़े कि वह है भी। स्वस्थ आदमी का एक ही लक्षण है कि उसको शरीर का पता भी न रहे। और बीमार आदमी लक्षण है कि उसको पता चलता रहे... कि यह शरीर है, यह पैर है, यह सिर है। तो कुछ भी पता नहीं चलना चाहिए। इतनी एक तो शारीरिक व्यवस्था देनी चाहिए, लेकिन हिंदुस्तान का सारा चित शरीर विरोधी रहा है आज तक। सच तो यह है कि शरीर को जितना हम नुकसान पहुंचाएंगे उतना ही हम आध्यात्मिक समझे जाते रहे हैं।

काउंट कैसरलिंग ने एक डायरी लिखी है, हिंदुस्तान से लौट कर। और उसने लिखा है कि हिंदुस्तान जाकर समझ में आया कि टुबी हेल्दी इज टुबी अनस्प्रिचुअल। हिंदुस्तान जाकर यह समझ में आया कि स्वस्थ एक गैर आध्यात्मिक बात है, अस्वस्थ होना एक आध्यात्मिक खूबी है। तो हिंदुस्तान की शिक्षा यह रही है, शरीर विरोधी। स्नान मत करो, संन्यासी कहते हैं। संन्यासियों के वर्ग है कि स्नान नहीं करते। और आप स्नान करते हैं इसलिए आपको पापी समझते हैं। पसीना आ जाए उनको पोंछो मत क्योंकि पसीने को पोंछना शरीर को सुंदर बनाने की चेष्टा है। और शरीर को सुंदर क्यों बनाएं? शरीर को सुंदर बना तो पाप है।
तो मेरा कहना है, शरीर स्वस्थ होना चाहिए, शरीर सुंदर होना चाहिए। ये वैल्यूज हमें कल्टीवेट करनी चाहिए, पांच हजार साल में यह वैल्यूज खत्म हो गई। कोई आदमी शरीर के सौंदर्य चेष्टा करता है तो वह अपने भीतर गिल्टी अनुभव करता है कि वह कोई पाप कर रहा है। एक बच्चा अगर सुंदर दिखाई पड़ता है या वह सुंदर होने की चेष्टा करता है, स्वस्थ होने की, तो वह गिल्टी है। वह कोई अच्छा काम नहीं कर रहा है। फूहड़ कपड़े पहनें लड़के तो अच्छे मालूम होते हैं। वह ऐसे कपड़े पहनें जिनमें ताजे और स्वस्थ और सुंदर दिखाई पड़े तो हमारा समाज विरोध में है इस बात के लिए, कि यह गलत बात है। क्योंकि हमारी कारण यह है कि शरीर विरोधी है हमारा चिंतन पूरा; कि हम आत्मा की बात करना चाहते हैं शरीर के विरोध में। तो मेरा पहला कहना है कि शरीर का मूल्य वापस प्रतिस्थिति करना है। शरीर का मूल स्थापित करना है वापस।
शरीर को इस ट्रेनिंग के साथ ही उसी के साथ सैन्य शिक्षण हर बच्चे को मिलना चाहिए। क्योंकि जब तक हम बहुत छोटी उम्र से सैन्य शिक्षण न दें तब तक न तो हम साहस विकसित कर सकते हैं। और जिस बच्चे में साहस नहीं है वह बच्चा कभी भी नैतिक नहीं हो सकेगा। मैं नैतिक जीवन का बुनियादी आधार करेज मानता हूं--न तो सत्य मानता हूं और न अहिंसा मानता हूं, करेज जितना साहसी लड़का होगा, जीवन में उतना ही वह सत्यवादी होगा। क्योंकि जब भी साहस की कमी पड़ती है तभी आदमी झूठ बोलता है। जब उसको लगता है कि ठग जाएंगे सच बोलने से, तब झूठ बोलने लगता है। जब उसको लगता है कि ईमानदारी की तो नुकसान हो जाएगा तो वह बेइमानी करता है। मेरी दृष्टि में सारी अनीति साहस की कमी है।
और साहस तभी विकसित होता है जब हम बच्चों को साहस की ट्रेनिंग से गुजारें। सैनिक शिक्षण का मतलब है कि उसे साहस की ट्रेनिंग से गुजारना चाहिए। छोटे से छोटे बच्चों को पहाड़ों पर ले जाना चाहिए, समुद्रों में तैरना चाहिए। दस पच्चीस हजार बच्चे हर साल मरेंगे, मर जाने देना है, इसकी फिकर छोड़ देनी है--पूरी कौम के मरने की बजाय। जिस तरह से कल्टीवेट हो सके साहस, दुस्साहस कल्टीवेट हो सके, वह हमें सारी चेष्टा कर पाएंगे। नहीं तो यह जो शिक्षक हमें समझा रहे हैं और नेता समझा रहे हैं कि मारल टीचिंग हो स्कूल में, झूठ बोलना पाप है--यह तो हम पांच हजार साल से कर रहे हैं। इसमें कुछ-कुछ नहीं हुआ। कि अहिंसा परमोधर्म है, यह सब तो बहुत हो चुकी है बकवास, इससे कुछ हुआ नहीं। हमें यह पकड़ना पड़ेगा कि एक आदमी अनैतिक होता कब है? जब भी उसमें साहस की कमी पड़ती है और फियर पैदा होती है, तभी वह अनैतिक होता है। तभी बचाव के लिए एक ही रास्ता रह जाता है उसके पास कि वह झूठ बोल ले, बच जाए। बेईमानी कर ले, चोरी कर ले। हमें इतना साहसी बच्चा पैदा करना है जो कि जान हमेशा हथेली पर लिया रहे तो ही नैतिक आदमी पैदा होगा। क्योंकि पूरी सोसाइटी ही इम्मॉरल है और मारल आदमी तभी पैदा हो सकता है जब पूरी सोसाइटी से लड़ने की हिम्मत उसके भीतर हो। हममें लड़ने की हिम्मत नहीं है। हमें लड़ने की हिम्मत पैदा करने की बड़ी जरूरत है। और वह कोई बच्चे में किससे लड़ने की हिम्मत हम पैदा कर सकते हैं, समुद्र से लड़ने की हिम्मत पैदा कर सकते हैं, पहाड़ पर जूझने की हिम्मत पैदा कर सकते हैं। उसे हम उस ट्रेनिंग से गुजार सकते हैं जहां उसे ऐसा लगने लगे कि वह जान हथेली पर लिए हुए है।
एक घटना मुझे याद आती है--अकबर के पास दो राजपूत लड़के गए। उम्र कोई बीस वर्ष है। दोनों जुड़वा भाई हैं और उन्होंने जाकर, अकबर से जाकर कहा कि हम दो बहादुर लड़के हैं, और नौकरी की तलाश में आए हैं। अकबर ने ऐसे ही मजाक में पूछा कि बहादुरी का कोई प्रमाण-पत्र है? कैसे हम समझे कि तम बहादुर हो? उन

दोनों की आंखों में एकदम आग चमक गई। उन्होंने बहादुरी का प्रमाण-पत्र कहीं सुना है? और कोई बहादुर आदमी किसी दूसरे से प्रमाण-पत्र लिखाने जाएगा कि मैं बहादुर हूं? अगर कोई लिखता है तो उसको कायर समझ लेना और उन्होंने तलवार निकाली और वे तलवारें एक दूसरे के छाती में घुस गई। दोनों भाई थे। फव्वारा छूट गया, खून का, नीचे गिर पड़े। अकबर तो घबड़ा गया। उसने अपने सेनापतियों को बुलाया राजपुतों को कि यह क्या हो गया? यह तो बड़ी मुश्किल हो गई। मैंने तो सिर्फ प्रमाण-पत्र पूछा था। उन सेनापतियों ने कहाः राजपुतों से प्रमाण-पत्र पूछना होता है। प्रमाण-पत्र एक ही है कि हम मरने को हमेशा तैयार हैं, उसके सिवा और क्या प्रमाण हो सकता है? बहादुर आदमी का प्रमाण-पत्र क्या है--कि हम मरने को हमेशा तैयार है। जीने का कोई मोह नहीं ऐसा कि हम उसके लिए कुछ खोने को तैयार हों। सब खो सकते हैं--जीने को भी खो सकते हैं, दांव पर लगा सकते हैं।
तो छोटे बच्चों को, मेरी दृष्टि में, दूसरी ट्रेनिंग का हिस्सा है, जीवन को दांव पर लगाने की। वह तो मेरा कहना यह है कि वह तो बढ़ाते जाना चाहिए जब की युनिवर्सिटी के लेवल पर बच्चा बाहर न निकले। तो वह तो कर देना चाहिए जितनी जल्दी हो सके। के. जी. शुरू करना चाहिए। डवलपमेंट होंगे उसके तो। के. जी. के बच्चे कोई समुद्र में नहीं फेंक देना है, लेकिन के. जी. के बच्चे को भी अंधेरे में भेजा जा सकता है, दरख्तों पर चढ़ाया जा सकता है, उसकी हिम्मत बढ़ाई जा सकती है, जहां उसको हमेशा यह लग सके कि मर सकता हूं, लेकिन मरना फिकर नहीं करनी है जो करना है। वह इतना जल्दी बीजारोपण करना है कि युनिवर्सिटी के लेवल तक आते-आते हम उसको उस हालत में खड़ा कर दें कि वह अपने को बहादुर कह सके, तो हम कैरेक्टर खड़ा करेंगे, क्योंकि सोसाइटी है इम्मॉरल।

प्रश्नः फिजिकली वीक बच्चे हों?

मैं समझा आपकी बात को--फिजिकली वीक भी बच्चे है। उसका कारण कुल इतना
है कि बच्चे पैदा करने की हमारी सारी व्यवस्था अवैज्ञानिक है। सच तो यह है कि अगर थोड़ी भी वैज्ञानिक बुद्धि और समझ हो तो हर आदमी को बच्चा पैदा करने का हक नहीं होना चाहिए मेरी जो समाज की अपनी कल्पना है उसमें हर आदमी को बच्चा पैदा करने का हक नहीं देता--मेरी समाज की कल्पना में। बच्चा पैदा करने का हक बहुत बड़ी जिम्मेवारी है क्योंकि आप एक बच्चे को पैदा नहीं कर रहे हैं, आप बच्चे के द्वारा पूरी इस दुनिया को पैदा कर रहे हैं जो कि हजारों साल तक आगे जारी रहेगी। तो बच्चे पर तो नियंत्रण होना चाहिए कि किन मां बाप को सर्टिफाई करती है सरकार, वही बच्चे पैदा कर सकते हैं। हर कोई करने का सवाल नहीं है। फिर भी अभी कमजोर बच्चे हैं। लेकिन जितने कमजोर बच्चे हैं उनमें से अधिक बच्चे कमजोर इसलिए हैं कि उनको कभी ट्रेनिंग से नहीं गुजारा गया है कि उनकी कमजोरी दूर हो जाए। अगर सौ बच्चे कमजोर हैं तो उनमें बीस बच्चे ही ऐसे साबित होंगे जिनको ठीक नहीं किया जा सकता, बाकी बच्चे ठीक किए जो सकते हैं। और जो बीस बच्चे ठीक नहीं किए जा सकते हैं उनको उन क्षेत्रों में ले जाना चाहिए जहां कमजोरी बाधा नहीं है, लेकिन साहस की उनको भी जरूरत है।
साहस और कमजोरी में फासला है। कमजोर आदमी अनिवार्य रूप से साहसी नहीं होता है, ऐसा मत समझ लेना। और ताकतवर आदमी अनिवार्य रूप से साहसी होता है, ऐसी भी समझने की कोई जरूरत नहीं है। साहस कुछ इनर क्वालिटी है, कमजोरी बिल्कुल शरीर की बात है। एक कमजोर आदमी भी साहसी हो सकता है अगर वह मौत को झेलने की हिम्मत करता है। और एक ताकतवर आदमी कमजोर हो सकता है। अगर भाग खड़ा हो और मरने से डरता है। तो मेरा कहना है कि कमजोरी मिटाने की कोशिश करनी चाहिए सब तलों--जन्म से लेकर मृत्यु तक। और दूसरी बात, कि अभी जो कमजोर बच्चे हैं उनको तो मिटाया नहीं जा सकता है, उनको डायरेक्शन देने की जरूरत है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

समझा, समझा। पहले तो कमजोर बच्चे को स्वस्थ बनाने की पूरी चेष्टा करनी चाहिए। मेरा कहना है सौ में से अस्सी बच्चे तो ठीक हो सकते हैं जो बीस बच्चे बचते हैं उनका भी हम दिशा दे सकते हैं। जैसा मेरा कहना है, स्कूल टीचर है, स्कूल टीचर के लिए कोई बहुत शक्तिशाली आदमी की जरूरत नहीं है। शक्तिशाली आदमी स्कूल के टीचर बनें, यह फिजूल की बात है। यह ऐसा काम है कि इसमें साधारण स्वास्थ्य का आदमी भी ठीक है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

क्योंकि सारे लोग समान नहीं हैं, और समान हो भी नहीं सकते हैं। मैं समझता नहीं, वे शब्द जो हैं हमारे, वे इतने गंदे हो चुके हैं, उसका उपयोग भी नहीं करना चाहिए। वे दोनों भाई हैं और बहादुरी का सवाल नहीं है, वे दोनों यह बताना चाह रहे हैं कि मौत को हम हाथ में लिए हुए है।
और साहस का यह अर्थ है कि आदमी जिंदगी को इतना मूल्यवान नहीं सकता कि उसे भी किसी क्षण खोने से झिझकता हो और डरता हो। जो मैं उस उदाहरण से कहने वाला हूं, कोई उदाहरण पूरा नहीं है। उदाहरण से जो मैं कहने वाला हूं वह यह कि करेज का मतलब क्या है आध्यात्मिक अर्थों में। करेज का आध्यात्मिक अर्थों में एक ही मतलब है कि ऐसा आदमी जो मौत से किसी भी क्षण और किसी भी कारण से भयभीत नहीं है। जो मौत को ऐसे ही अंगीकार कर सकता है जैसे किसी प्रेमी को अंगीकार कर रहा हो। लेकिन इससे ज्यादा मेरा कहने का मतलब नहीं है। उसमें जितना आप सोच सकते हैं सोचें, उसमें मेरा एतराज भी नहीं है कह कुल इतना रहा हूं कि मौत को साक्षात करने की क्षमता विकसित होनी चाहिए बच्चों में, तो हम चरित्र, तो हम व्यक्तित्व और तो एक जातीय गुण पैदा कर सकेंगे जो कि बिल्कुल खो गया है।
और मेरी अपनी दृष्टि यह है कि हारी सारी शिक्षा, आज तक की सारी संस्कृति कायरता पैदा करती है, साहस पैदा नहीं करती। और कायरता के कारण इतनी चरित्रहीनता पैदा हुई है, यह बाई-प्रॉडक्ट है। हम बात करते हैं, आत्मा अमर है, फलां है, ढिंका है, लेकिन हम इसलिए बातें करते हैं आत्मा की अमरता की, कि हमको मौत का डर है; और कोई कारण नहीं है। मैं यह नहीं कह रहा कि आत्मा अमर नहीं है। हम जो बातें करते हैं आत्मा की अमरता की वह सिर्फ मौत का भय और डर है। और उस डर का हमने इतना पोषण किया है, इतना पोषण किया है कि एक एक आदमी बिल्कुल भयभीत है मरने से। और इस भय में जो आदमी खड़ा हुआ है, उससे आप कुछ करवा सकते हैं। एक आदमी उसकी जोर से गर्दन पकड़ ले और कहे मार डालेंगे, अदालत में चल कर हमें यह कह दो, वह आदमी तैयार है। उसको दिखाई पड़े कि मैं फंस जाऊंगा, वह झूठ बोलने को तैयार है, बेइमानी करने को तैयार है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हमेशा सारे ढंग ही वैज्ञानिक है, अगर ढंग है तो! नहीं तो ढंग ही नहीं है। यह जो युवक है आज आपके पास, मेरी दृष्टि में भारत के इतिहास में पहली दफा युवक उस हालत में पहुंचा है कि धार्मिक हो सकता है, इसके पहले तो कभी हो ही नहीं सकता। क्योंकि न तो युवक में विद्रोह था आज के पहले, और जिस युवक में विद्रोह ही नहीं है वह धार्मिक नहीं हो सकता। धार्मिक होने के लिए बड़ी विद्रोह क्षमता चाहिए क्योंकि धार्मिक होने का मतलब यह है कि वह सत्य की खोज में जाता है। और सत्य की खोज में जाने का मतलब यह है कि आपके समाज ने हजार झूठ थोपे हैं जिनको वह तोड़ेगा, तो वह सत्य की खोज में जाने वाला है।
मेरी दृष्टि में भारत के भाग्य में एक बहुत कीमती क्षण आया है, अगर वह लड़कों का उपयोग कर सके तो ये लड़के धार्मिक हो सकते है। आपका पुराना लड़का तो धार्मिक हो नहीं सकता था, वह जो--हजूर था। उसमें इनकार करने की ताकत भी नहीं थी। और मेरी यह भी समझ है कि जिस बच्चे में इनकार की ताकत नहीं है इसके हां का कोई मूल्य नहीं है। जो नो नहीं कह सकता तो उसके यस का दो कौड़ी

मूल्य है। तो उसके यस में कोई जान नहीं है। आज पहली दफा बच्चे ने कहा है, नो--पच्चीस चीजों पर और इस बच्चे को अगर हम राजी कर सके और यह कह सके तो इस बच्चे के यश का अर्थ होगा, पूरे मुल्क को बदल देने वाला होगा।
आज तक हिंदुस्तान में जवान था ही नहीं। बूढ़े थे और बूढ़ों के अनुगत थे, जवान नहीं थे। जवान की कोई पीढ़ी नहीं थी हिंदुस्तान में। बूढ़ा आदमी था और बूढ़े का आज्ञाकारी जवान है। जवान की पीढ़ी विकसित हुई है अभी। यानी अब हमको लगता है कि जवान कुछ अलग है। उसकी अपनी हैसियत खड़ी हो रही है। और वह जो हमें उसमें दिखाई पड़ रहा है उसकी गैर आध्यात्मिकता, वह गैर आध्यातिमकता नहीं है। आपके सारे मूल्य असफल सिद्ध हो चुके हैं। आपने जितनी वैल्यूज आज तक खड़ी की थीं वह सब असफल हो गई है। बाहर जाने वाली शक्तियां जग रही है। अभी आंख खुलने का वक्त है, अभी आंख बंद करने का उसका वक्त भी नहीं है। अभी वह एक कोने बैठे नहीं सकता, अभी वह सारी एक्टिविटी उसके भीतर मचल रही है। तो मेरी अपनी दृष्टि यह है--मेडिटेशन इन एक्शन, एक नई प्रक्रिया ध्यान की विकसित होनी चाहिए, और हो सकती है, कठिनाई नहीं है कि हम एक्शन के साथ ध्यान को जोड़ें। जैसे--लड़के कवायद कर रहे हैं, मिलिटरी की कवायद हो रही है तो कवायद करते वक्त इस भांति उनको समझाया और सिखाया जा सकता है कि वह पूरी कवायद पर अटेंशन दें, वह सिर्फ कवायद ही कर रहे हैं उनका मन और कुछ भी नहीं कर रहा है सिर्फ एक्शन रह जाए।
बुद्ध दो तरह के प्रयोग करते थे ध्यान का। एक तो वह कहते थे बैठकर ध्यान कर और एक को वह कहते थे चलते हुए ध्यान। वह भिक्षुओं को कहते थे एक घंटा बैठ कर ध्यान करो फिर एक घंटा चलते हुए ध्यान करो। बैठ कर एक बात है ध्यान की ज्यादा आसान है। चलकर ध्यान थोड़ा कठिन है। एक्शन के साथ क्रिया हो रही है और ध्यान। लेकिन युवक के लिए चल कर ध्यान करना आसान है बजाय बैठकर। तो मेरी दृष्टि यह है कि मेरी मिलिटरी ट्रेनिंग युवक की हो और उसकी मिलिटरी ट्रेनिंग का अनिवार्य सेटल हिस्सा मेडिटेशन हो। वह चले, खेले, दौड़े।
उन्होंने जापान में एक व्यवस्था खोज ली थी। जापान में जैसे यहां क्षत्रिय होते थे वैसे वहां समुराई जापान में क्षत्रियों का वर्ग था। उन्होंने ध्यान को तलवार बाजी के साथ जोड़ रखा था। तलवार चलाना सिखाते और ध्यान के साथ तलवार चलाओ ध्यानपूर्वक। तो समुराई दो काम कर लेता था। वह तलवार चलाना सीखते सीखते ध्यानस्थ होना भी जान जाता था। और युद्ध के मैदान में समुराई का कोई मुकाबला नहीं था दुनिया में क्योंकि वह जितना शक्तिशाली होता था, जितना मौन होता था, जितना निर्विचार होकर लड़ता था उतना दूसरा आदमी तो निर्विचार भी नहीं था शांत भी नहीं था, वह पच्चीस बातें भी सोच रहा था। समुराई से जीतना मुश्किल था। और धीरे-धीरे तो यह हालत पैदा हुई जापान में कि अगर दो समुराई में कभी तलवार बाजी हो जाए तो कोई नहीं जीत पाया था जीतना ही मुश्किल था किसी का। क्योंकि वह दोनों ही उतने शांति से इतना मौन, इतने मेडिटेटिविली लड़ते थे कि मुश्किल मामला था कि कोई जीत जाता।
ठीक उस तरह की कोई व्यवस्था मिलिटरी ट्रेनिंग के साथ युवकों के लिए खोजनी जरूरी है। और एक संगठन चाहिए युवकों का सारे देश में जो मिलिटरी के ढंग पर आयोजित हो लेकिन धार्मिक शिक्षण जिसका केंद्र हो। और धार्मिक शिक्षण से मेरा मतलब, ध्यान का शिक्षण। धार्मिक शिक्षण से मेरा मतलब नहीं कि गीता पढ़ाओ उनको, धार्मिक शिक्षण से मेरा मतलब नहीं है कि उनको बैठ कर पाठ रटवाओ कि सत्य बोलना अच्छा है। इससे प्रयोजन मेरा नहीं है। धार्मिक शिक्षण का मतलब ध्यान का शिक्षण है। इधर मेरे मन में एक योजना आती है कि एक युवक क्रांति दल पूरे मुल्क में खड़ा किया जाए। उसकी सारी प्रवृत्ति ठीक सैनिक प्रशिक्षण की होगी, लेकिन उसके केंद्र में ध्यान होगा और ध्यान और कर्म को अगर हम जोड़ दें तो हम युवक को धार्मिक बना सकते हैं, अन्यथा नहीं। अभी तक युवक धार्मिक नहीं बन सका क्योंकि ध्यान था। निष्क्रिय वृद्धों के लिए और कर्म था युवकों के लिए। कर्म और ध्यान के बीच कोई सेतु नहीं है इधर मैं यह सोचता हूं कि वह सेतु होना चाहिए। बचपन से साहस, युवा होने पर ध्यान और कर्म, इन दोनों को संयुक्त रूप जोड़ा जा सके तो हम एक व्यक्तित्व बना

सकते हैं, जिसको धार्मिक युवक कह सकते हैं। और वैसे युवक में क्वालिटी अपने आप पैदा होंगी जो आप लाख कोशिश करके पैदा नहीं कर सकते है। जैसे शांत व्यक्ति में अनिवार्य रूपेण प्रेम पैदा होता है, अशांत व्यक्ति में कभी प्रेम पैदा नहीं हो सकता है। क्योंकि अशांत व्यक्ति इतना भीतर परेशान है कि प्रेम करने का सवाल कहां है? वह घृणा कर सकता है, क्रोध कर सकता है द्वेष कर सकता है या ईर्ष्या कर सकता है लेकिन प्रेम नहीं कर सकता है। और अगर युवक प्रेम करने में समर्थ हो तो आज युवक की जितनी तोड़ फोड़ दिखाई पड़ रही है वह एकदम विलीन हो जाएगी। एकदम विलीन हो जाएगी। और आप लाख समझाए उसको कि तुम बस मत जलाओ, तुम क्लास का फर्नीचर मत तोड़ो। आदमी सोच ही हनीं पा रहा है, वह फर्नीचर तोड़ रहा है, बस जला रहा है, एक साइकिक मामला है उसके भीतर। उसके भीतर चित्त ऐसा है कि सिवाय तोड़ने के उसे कुछ सूझ ही नहीं रहा है। अगर आप बस न जलाने देंगे तो और खतरनाक चीजें तोड़ेगा वह।
जुंग एक मनोवैज्ञानिक था। उसके पास एक आदमी लाया गया। वह एक दफ्तर
में नौकर था और वह आदमी धीरे-धीरे पागल होता चला गया था। पागल कुल यह था कि जो उसका बॉस था वह उसे डांटना या अपमानित करता तो उसके मन में होता कि निकालूं जूता और इसको मार दूं। लेकिन बॉस को जूता कैसे मारा जा सकता है? वह अपने को रोक लेता था। लेकिन यह बात बढ़ती चली गई, ऑब्सेशन हो गया। मालिक कुछ कहे, उसका हाथ जूते पर जाए और घबड़ा कर अपने को रोक लेता। उसे यह डर पैदा हो गया कि किसी दिन मैं अगर निकाल के मार ही न दूं, नहीं तो मुश्किल हो जाएगी, नौकरी चली जाएगी। तो उसने छुट्टी ले ली और वह घर पर बैठ गया। लेकिन घर बैठे गया तो उसका ही चिंतन चलने लगा उसे कि कहीं रास्ते पर वह मुझे मिल जाए और मैं जूता निकाल कर मार दूं।
जुंग के पास उसे लाए। जुंग ने कहाः यह ठीक हो जाएगा। मालिक का एक चित्र ले आओ और रोज इससे कहो कि दफ्तर जाने के पहले और दफ्तर से आने के बाद पांच जूते मालिक के चित्र को मार कर, तुम जाओ। लोगों ने कहाः यह क्या पागलपन है, इससे क्या होगा? लेकिन जुंग ने कहाः तुम करो, रिलिजियसली तुम इसको करो। ऐसा नहीं, जब पूजा करता है आदमी रोज नियमित वक्त पर उसके जूते मारने में। वह आदमी भी हंसा। लेकिन उसे खुशी हुई। यह बात कुछ लगी, दिल में बहुत दिन से यह बात थी। उसने पांच जूते सुबह और पांच जूते शाम को मार कर यह दफ्तर जाना शुरू किया। और पहले जूते मार कर गया तो वह उस आदमी ने लौट कर कहा कि आज मुझे मालिक पर उतना क्रोध नहीं आया जितना मुझे रोज आता था। और पंद्रह दिन के भीतर वह आदमी दफ्तर में शांति से काम करने लगा। और मालिक ने खुद कहाः इस आदमी में क्या फर्क हो गया? यह आदमी बड़ा शांत मालूम पड़ रहा है। कोई फर्क नहीं हो गया, और महीने भर में वह आदमी नार्मल हो गया। एक साल भी चला गया और वह खुद हंसने लगा कि यह क्या पागलपन था कि मुझे जूता मारने का खयाल आता था।
हमने उस एक निकास दिया। हिंदुस्तान के युवक के पास शक्ति है। और शांति बिल्कुल नहीं है। अशांत चित्त है और शक्ति पास है। अशांत चित और शक्ति पास होगी तो टूट-फूट होगी, विघटन होगा, आज्ञाहीनता होगी, सब तरह का उपद्रव पैदा होगा, शिक्षक और नेता और ये पुरोहित समझा रहे हैं युवकों को कि तुमको यह बुरा काम नहीं करना चाहिए कोई भी यह नहीं देख रहा है कि इसके भीतर साइकिक स्थिति ऐसी है कि आप इधर से रोकोगे उधर करेगा उधर से रोकोगे वहां करेगा। उसकी साइकिक स्थिति बदलने की जरूरत है।

जीवन आलोक
पांचवां प्रवचन

नाचो--क्रांति है नाच

एक गुरु अपने शिष्य के कमरे के बाहर रोज आता है और एक ईंट को पत्थर पर घिसता है। शिष्य वहीं ध्यान करता है और ईंट के घिसने से, रोज-रोज घिसने से नाराज होता है। एक रोज तो उसे बहुत गुस्सा आया कि यह और कोई कर रहा हो तो ठीक है, यह मेरा गुरु ही आकर मुझे परेशान करता है, ईंट घिसता है। आंख खोली और कहाः आप यह क्या पागलपन करते हैं? क्यों मुझे परेशान कर रहे हैं? उसने कहाः तुझे मैं परेशान नहीं कर रहा। मैं ईंट को घिस-घिस कर आईना बनाना चाहता हूं। वह हंसने लगा, उसने कहाः तुम पागल हो गए हो। ईंट को कितना ही घिसो, आईना कभी नहीं हो सकती। तो उसके गुरु ने कहाः अगर मैं मेहनत करूंगा तो भी नहीं बनेगी क्या? मैं पूरी मेहनत करूंगा, मैं जीवन भर घिसता रहूंगा, फिर तो बनेगा?
जीवन भर भी घिसोगे, तो भी नहीं बनेगा। ईंट घिसने से आईना नहीं बनती। उसके गुरु ने कहाः तू भी बहुत घिस रहा है, लेकिन मेरी दृष्टि में ईंट घिस रहा है और आईना बनाना चाहता है। और सोचता है, मेहनत करूंगा तो हो जाएगा। अगर गलत दिशा में और गलत ढंग से कोई काम कर रहे हैं तो कितने ही दिन तक
आप करते रहें, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तो ठीक दिशा नहीं थी, इसलिए कठिनाई हुई है। उसमें आम आदमी की कोई भूल नहीं है। ठीक दिशा में श्रम होगा तो बहुत परिणाम होंगे। तो इसलिए वह निराशा मुझे अर्थपूर्ण नहीं मालूम पड़ती।

प्रश्नः जो हम सोचते हैं, अनुभव करते हैं, उसे सही-सही शब्दों में नहीं लिख सकते हैं। इसलिए जो कहा है, गीता में शास्त्रों में, तो इससे लगता है कि इससे ज्यादा और शब्द नहीं हैं अपने पास कहने के लिए। आपके शब्द हैं तो आप अपनी रीति से कह सकते हैं अपना अनुभव।

असल में तुम्हारे पास अनुभव हो तो तुम्हारा कमजोर से कमजोर शब्द भी ज्यादा बलवान होगा, बजाय उधार शब्द के। जैसे एक आम आदमी किसी को प्रेम करता है और प्रेम पत्र लिखता है। वह कोई टूटे-फूटे अक्षरों में अपनी बात लिख दे रहा है तो भी वह पत्र ज्यादा प्यारा होगा, बजाय इसके कि वह किताब में से छपा हुआ पत्र उतार कर भेज दे। वह छपा हुआ किताब में से लिया गया ज्यादा ठीक होगा, व्यवस्थित होगा, लेकिन निष्प्राण होगा। उसमें प्राण नहीं होंगे। तो अपना अनुभव अगर टूटे-फूटे शब्दों में भी प्रकट हो तो जीवंत होता है क्योंकि तुम्हारा है। और असली सवाल उसके जीवंत हो जाने का है, असली सवाल उसके अच्छे शब्दों का नहीं है।
तो जहां तक बन सके, उधार शब्दों से बचना ही चाहिए। और उधार शब्दों को तुम पकड़ते ही इसीलिए हो कि तुम्हारे पास अपना कोई अनुभव नहीं है। अनुभव हो तो नहीं पकड़ोगे। अनुभव अपना रास्ता खोज लेता है प्रकट होने का। जब जरूरत होती है तब रास्ता खोज लेता है। तुम्हें पता भी नहीं चलता है कि उसने रास्ता खोज लिया। वह तुम्हारे भीतर एक तीव्र पीड़ा बन जाता है। वह इतनी पीड़ा बन जाता है, जैसे प्रकट होने के लिए बादल आकाश में घिरता है, उसमें अगर पानी है, अगर वह कोरा और खाली बादल नहीं है तो वह बरसेगा ही। बरसने का रास्ता अपना खोज लेगा। फूल में अगर प्राण है तो वह खिलेगा और सुगंध फेंकने का रास्ता खोज लेना। तुम्हारे भीतर जिस दिन अनुभव होगा उस दिन अभिव्यक्ति का मार्ग भी खोजना शुरू कर देगा। वह खोज ही लेगा। नहीं है अनुभव, तो फिर तुम उधार शब्दों को पकड़े बैठे रहोगे और उनको दोहराते रहोगे और धोखा अपने को यह दोगे कि चूंकि शब्द हमें नहीं मिलते इसलिए हम इन शब्दों का उपयोग कर रहे हैं। टूटा-फूटा शब्द भी बहुत मूल्यवान है--तुम्हारा होना चाहिए। तो तुम पाओगे, उसमें एक इनटेंसिटी होगी, एक तीव्रता होगी, एक बल होगा।
और इसलिए अक्सर यह बड़े मजे की बात है कि दुनिया में जितने लोगों ने बहुत बलशाली शब्द बोले हैं, वे अक्सर गैर पढ़े लोग हैं। मोहम्मद के पास कोई

पढ़ाई-लिखाई नहीं थी, जीसस के पास कोई पढ़ाई-लिखाई नहीं थी। रामकृष्ण के पास कोई पढ़ाई-लिखाई न थी। इतने बलशाली शब्द वाले हैं जीसस ने, जिसका कोई हिसाब नहीं। वैसे शब्द हैं, जैसे कि जानवर चराने वाले आदमी होते हैं। लेकिन उनमें बल और ताजगी भी उतनी है, लकड़ी की चोट पर हैं वे शब्द। मोहम्मद के शब्दों में कोई बहुत पढ़े-लिखे आदमी का कुछ भी नहीं है। वह पढ़ा-लिखा आदमी नहीं है। वह वही है जैसा कि एक ऊंटों को चराने और काफिलों को ढोने वाले आदमी के शब्द होते हैं। लेकिन बड़ी ताजगी बड़ा बल है, बड़ी चोट है, उसमें। वह सीधा आ रहा है। उसमें कोई उधार बीच में नहीं है।
तो दुनिया में यह जान कर तुम्हें हैरानी होगी कि पंडितों ने कभी बलशाली शब्द नहीं बोले हैं। अब तक दुनिया के श्रेष्ठतम बोले गए शब्द करीब-करीब अधिकतम मात्रा में पंडितों के बोले हुए शब्द नहीं है क्योंकि न तो आत्मा की ताकत होती है पीछे, न वह दृढ़ता होती है जो अनुभव से आती है, न वह तीव्रता होती है। वह कुछ भी नहीं होता। मैं किसी को प्रेम करता हूं और हृदय से लगाता हूं इसकी तीव्रता बिल्कुल और है और मैं किसी किताब में पढ़ता हूं कि प्रेम करने में किसी को हृदय से लगाना और इसीलिए किसी को हृदय से लगाता हूं, इन दोनों की तीव्रता में फर्क पड़ेगा। दूसरा केवल एक अभिनय होगा कि किताब में लिखा है इसलिए लगा कर देखना चाहिए कि क्या होता है? उसमें न कोई तीव्रता है, न कोई छटपटाहट है।
कालिदास के जीवन में एक घटना है, बड़ी कीमत की है। जिस दरबार में--वह भोज के यहां थे, एक बहुत बड़ा पंडित आया। वह तीस भाषाएं बोलता है और इस तरह बोलता है, जैसे मातृभाषा हो। और उसने चैलेंज किया, चुनौती दी भोज के दरबार में कि अगर तुम्हारा कोई पंडित तुम्हारे दरबार का, पहचान ले कि मेरी मातृभाषा कौन सी है--यह तो बड़ी चुनौती थी भोज के लिए--यह तो सवाल ही नहीं है कि तुम्हारे यहां कोई तीस भाषाएं जानने वाला हो। कोई इतना भी पहचान ले कि मेरी मातृभाषा कौन सी है तो एक लाख स्वर्ण-मुद्राएं मैं भेंट करूंगा उसको और अगर नहीं पहचान सका तो एक लाख मुझे भेंट करनी पड़ेंगी। तो भोज ने अपने पंडितों को कहा कि बड़ा अपमान हो जाएगा। एक पंडित ने चुनौती स्वीकार की। उसने सब भाषाओं में थोड़ा-थोड़ा सुना। पहचानना मुश्किल था कि उसकी मातृभाषा कौन सी है। वह करीब-करीब एक ही बल से सारी भाषाएं बोलता था। मातृभाषा आमतौर से पहचानी जा सकती है, क्योंकि उसको बोलते वक्त आदमी और ही तरह से बोलता है। दूसरे की भाषा में झिझकता है, हेजिटेट करता है, रुकता है, ठहरता है। लेकिन नहीं पहचाना जा सका। एक लाख रुपया पहला पंडित हार गया। रोज एक पंडित हारने लगा। ग्यारह पंडित हार गए।
तब कालिदास को उसने कहा कि यह तो भारी अपमान हो रहा है। ग्यारह लाख रुपये तो उस आदमी ने जीत लिए और अगर वह जीत कर चला गया तो क्या होगा? हमारे दरबार में पहचानने वाले नहीं कि मातृभाषा क्या है? कालिदास ने कहा, मैं आज कोशिश करूंगा, लेकिन कहने की जरूरत नहीं है। बारहवां पंडित हार गया। एक लाख रुपया लेकर सब लोग बाहर निकले हैं, वह फिर जीत गया है बारहवें से। महल की सीढ़ियों पर जब वह उतरने लगा तो कालिदास ने एक धक्का दे दिया उस आदमी को। वह सीढ़ियों से दस-बारह सीढ़ियां नीचे गिरा। उसने गुस्से में जो बोला... कालिदास ने कहाः धक्का दिए बिना कोई रास्ता नहीं था, यह आपकी मातृभाषा है। उसने गुस्से में जो गाली दी। अब यह इटेंसिटी और थी, अब यह बात ही और थी, और यह मामला ही और था, अब यह पहचाना जा सकता था। और कालिदास ने कहा और कोई रास्ता नहीं हमारे पास पहचानने के लिए इसलिए क्षमा करना। लेकिन अब बात ही और थी, यह मामला ही और था।
तो आदमी प्रेम और क्रोध अपनी मात्र भाषा में ही कर सकता है, दूसरी भाषा में नहीं। परदेश इसलिए बुरा लगता है कि वहां प्रेम करना मुश्किल हो जाता है। और सब... और सब ठीक है, परदेश में प्रेम करना मुश्किल है। अगर सोच-सोच कर बोलना पड़े तो मामला खराब हो गया। क्रोध करना भी मुश्किल है। तो प्रेम और क्रोध अपनी ही भाषा में। तो ऐसा ही जब तुम्हें कोई अपने अनुभव होंगे तो तुम्हें उसके लिए भाषा मिल जाएगी, बिल्कुल भाषा मिल जाएगी। शब्द सबके पास है, इशारे सब के पास हैं। अनुभव नहीं है पास में। अनुभव होता तो वह शब्द खोज लेगा, अपने इशारे खोज लेगा। उसको चिंता नहीं करनी चाहिए। उसकी

चिंता नहीं करनी चाहिए। जहां तक बन सके, जितना उधारी से बच सको उतना अच्छा है। तो किसी दिन तुम्हें मिल सकती है।

प्रश्नः लेकिन हम वहीं कहीं खड़े हैं। और स्वयं अनुभव क्या है? मनुष्य सोया है तो किस तरीके से अनुभव को प्राप्त होगा? आप जो कहते हैं वह हम सब सही मानते हैं, लेकिन वह कैसे स्वयं अनुभव होगा?

हां, वह तो नहीं हो सकते हो पहली बात। वही तो कतई नहीं हो सकते हो। पहली तो बात यह कि आप वही नहीं हो सकते क्योंकि तीन साल पहले यह प्रश्न आप नहीं सोच सकते थे। यह, प्रश्न तीन साल पहले आप नहीं सोच सकते थे। यह भी खयाल में आ जाए कि मैं तीन साल से एक ही जगह रुका हुआ हूं और आगे नहीं बढ़ रहा हूं तो यह बड़ी प्रगति की बात है। बड़े क्रोध की बात है यह आदमी को तीस साल तक पता नहीं चलता, सत्तर साल तक पता नहीं चलता कि मैं वहीं खड़ा हुआ हूं, मैं कहीं आगे नहीं बढ़ा। और जिस आदमी को यह कांशसनेस आ जाए कि मैं रुका हूं तीन साल से, वहीं रुका हूं, कहीं आगे नहीं गया हूं, उसकी जिंदगी में बोध आना शुरू हो गया जो उसको फर्क ला देगा। यह पता नहीं चलता कि हम वहीं रुके हुए हैं; कि हम वहीं, वहीं घूम रहे हैं। यह पता चलना कोई आसान बात नहीं है। इसको बोध बड़ी हिम्मत का बोध है। यह बोध तभी हो सकता है जब मेरे मन से यह अहंकार चला कि मैं हूं, आगे बढ़ता हूं समझदार होता जा रहा हूं, अनुभवी होता जा रहा हूं। यह कोई साधारण खयाल नहीं है।
दूसरी बात यह कि मेरे सुनने से क्या हो सकता है? मेरे सुनने कुछ नहीं
हो सकता। मेरे ठीक मान लेने से भी कुछ नहीं हो सकता लेकिन मेरे सुनने से, समझने से, विचार करने से आपके भीतर, आपके लिए क्या उपयुक्त हो सकता है, उसकी धीरे-धीरे अंतर-प्रेरणा जग सकती है। वह आपको करना पड़े, उसके लिए कोशिश। मेरी तो यह समझ भी नहीं है कि मैं आपको बताऊं कि आप क्या करें। क्योंकि मेरी समझ में तो एक-एक व्यक्ति इतना अनूठा है कि ठीक किसी दूसरे व्यक्ति का नियम, किसी दूसरे व्यक्ति का ढांचा उसका ढांचा नहीं हो सकता। तो मेरी तो सारी कोशिश इतनी ही है कि वह सोचना भर शुरू कर दे कि उसके लिए क्या हो सकता है, तो दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगी तो मुझे ठीक मानने की भी बहुत जरूरत नहीं, वह भी रुकने का कारण हो सकती है। मुझे ठीक मान लेना रुकने का कारण हो सकता है, उसकी भी जरूरत नहीं है। मैं जो कहता हूं, उस दिशा में थोड़ा सोचने, खोजने की सीधी अपनी जरूरत है। तो जो आप मेरी दिशा में सोचना, खोलना शुरू करेंगे तो जरूरी नहीं है कि जो मैं कहता हूं वहीं आप पहुंचेंगे। लेकिन आप कहीं पहुंचेंगे, जो मूल्यवान होगा और आपको बदलने वाला होगा। यानी ज्यादा से ज्यादा मैं इशारा कर सकता हूं कि इस दिशा में सोचने से कुछ हो सकता है। जो मैं कह रहा हूं, वह नहीं सोचना है। न ही उसी को पकड़ लेना है। वह तो क्या ठीक होगा, यह बिल्कुल आपकी खोज बनने वाली है।
तो सुन कर, समझ कर इतना ही हो सकता है कि हम थोड़े सचेत हो सकते हैं दिशा
की तरफ। रास्ते के प्रति भी नहीं, रास्ता तो आपको बदलना पड़ेगा। एक-एक कदम चल कर बनना पड़ेगा। लेकिन फर्क पड़ने शुरु हो जाते हैं, जिनका हमें कभी पता नहीं चलता। पहला फर्क तो यही पड़ जाता है कि हम सोचना शुरू कर देते हैं। अब जिंदगी के बाबत यह खयाल आ जाना कि मैं रुका हुआ हूं, तीन साल से, यह कितनी पीड़ा पैदा कर देगा इसका हमें कोई खयाल नहीं। और यह पीड़ा पैदा करेगा, उस पीड़ा से परिवर्तन होने शुरू हो जाएंगे। और वह परिवर्तन मैं जैसे कहता हूं वैसे होंगे, यह सवाल नहीं है, लेकिन वे परिवर्तन तो आपके अपने रास्ते लेंगे, आपके अपने रास्ते लेंगे, उनका अपना रास्ता लेगा। हमारी अनुभूतियां निर्विचार होने की बिल्कुल एक जैसी होंगी, समान होंगी लेकिन निर्विचार तक पहुंचने के हम सबके रास्ते बड़े अलग-अलग व्यक्तिगत होंगे। क्योंकि आप वहां बैठे हुए हैं, मैं यहां बैठा हुआ हूं, ये यहां बैठे हुए हैं। हम तीनों भी एक दिशा में भी चलेंगे तो भी हमारे रास्ते अलग होने वाले हैं क्योंकि रास्ता वहां से चलेगा, जहां मैं हूं। और अगर... वह जहां है दुनिया में कोई दूसरा आदमी वहां नहीं है, वह अकेला ही वहां है। वह उनका ही रास्ता होगा, जहां से वह चलेंगे।

तो चलने की दिशा खयाल में आ जाए, गलत दिशा खयाल में आ जाए। फिर चलना आपको है। और वह आपकी दिशा बनेगी, जो बिल्कुल अनूठी बनेगी। यह करीब-करीब... ऐसा नहीं है जैसा कि बने हुए राजपथों पर चलते हैं, बने हुए सीमेंट-कांक्रीट के रास्ते हैं उन पर हम बंधे हुए चलते हैंः ऐसा नहीं है, करीब करीब ऐसा है जैसा आकाश में पक्षी उड़ते हैं। न कोई बंधा हुआ रास्त है, न कहीं कोई लीक है। हर पक्षी को जहां उड़ना है, उड़ता है, जहां जाना है, जाता है। हर पक्षी का उड़ना ही उसका रास्ता है। तो जीवन का जो जगत है, वहां खुले आकाश जैसा है, जहां पक्षी उड़ते हैं, और न पक्षियों के पद-चिन्ह छूट जाते हैं पीछे कि दूसरे पक्षी उन पद चिन्हों को चुन लें और उन पर पैर रख कर चले जाएं। वह भी संभव नहीं है। कोई निशान नहीं छूट जाता है। तो जीवन के खुले आकाश में किसी के पैरों के कोई चिन्ह नहीं छूट जाते हैं जिन पर कोई चल सकता है।
तो मेरा कहने का मतलब यह है कि एक पक्षी को उड़ते देख कर दूसरे पक्षी को उसके पद-चिन्हों की तलाश नहीं करनी है, नहीं तो वह पागलपन में पड़ जाएगा। उसको उड़ते देखकर इतना ही जानना है कि मेरे पास भी पंख हैं और मैं भी उड़ सकता हूं। बस इससे ज्यादा नहीं। अगर मैं आपको उड़ता दिखाई पडूं तो आपको जानना चाहिए कि आपके पास भी पंख हैं, आप भी उड़ सकते हैं। लेकिन न मेरे पद-चिन्हों का कोई सवाल है, न मेरी कही गई बातों का कोई सवाल है। कोई मूल्य नहीं है उन बातों का। उनको ठीक मान कर रुकिएगा, अटक जाइएगा तो मैं भी अटकने वाला हो आता हूं। और उसी से मैं तोड़ना चाहता हूं। इससे क्या फर्क पड़ता है कि कृष्ण से आपको छुड़ा दूं, बुद्ध से छुड़ा दूं। आप मुझसे पकड़ जाए तो मामला तो उलटा हो गया; उसमें कहीं कोई फर्क नहीं पड़ा। बल्कि खतरा उसमें ज्यादा है। क्योंकि एक मरे हुए आदमी से बहुत ज्यादा बंधना मुश्किल होता है, जिंदा आदमी से बंधना बहुत आसान होता है। मरे आदमी से हमारे बीच फासला बहुत होता है, जिंदा आदमी के बीच हमारे पास ज्यादा निकटता हो सकती है। ज्यादा हम बंध सकते हैं। वह सवाल नहीं है। बस, एक पक्षी उड़ रहा है, यह देख कर दूसरे पक्षी को इतना भर भी खयाल आ जाए कि अरे मैं क्यों बैठा हूं।? मैं भी उड़ सकता हूं, बात खत्म हो गई। न उस पक्षी से कुछ लेना-देना है, न उसके रास्ते पर जाना है कि कहां वह गया, वहीं में जाऊं। किस-किस रास्ते से गया है। नहीं, उसके पंख में फड़फड़ाहट आ जाए तो बात हो गई।
तो मेरी कोशिश न तो रास्ता देने की है, न आपको किसी कहे हुए मार्ग में चलाने की है। मेरी कोशिश तो कुल इतनी है कि आपको यह दिखाई पड़ जाए कि पंख रहते हुए हम फिजूल बैठे हुए हैं, हम भी उड़ सकते हैं।
वह पैरेबल विवेकानंद कहने के बहुत शौकीन थे। बहुत पुरानी पैरेबल है
कि जंगल में एक सिंहनी छलांग लगाती थी एक पहाड़ से। वह गर्भवती थी, उसका एक बच्चा हो गया। वह छलांग लगाती थी, कहीं बच्चा गिर गया रास्ते पर। भेड़ों का एक झुंड जा रहा था, वह बच्चा उसी में गिर पड़ा। फिर वह भेड़ों के बीच में सिंह का बच्चा बड़ा हो गया। उसने भेड़ देखी चारों तरफ तो उसको पता ही न था कि वह सिंह है। क्योंकि जानता था कि मैं भी भेड़ हूं। भेड़ें भागती थीं; वह भी पूंछ दबा कर उन्हीं के साथ भागता रहता था। जरा कुत्ता भौंकता था तो वह भी भेड़ों के बीच घुस कर भागना शुरू कर देता था। उसे पता ही नहीं था कि वह क्या है। और पता चलने का कोई कारण ही न था, क्योंकि सब तरफ भेड़ें ही भेड़ें थीं। भेड़ों के बीच बड़ा हुआ था। वह एक भेड़ ही हो गया था, फिर एक दिन जंगल से वह निकल रहा था, वह बड़ा हो गया था। सब भेड़ों के ऊपर दिखाई पड़ता, लेकिन उसको कुछ पता नहीं।
एक सिंह ने देखा कि एक शावक भेड़ों के बीच चल रहा है और भेड़ें घसर-बसर उसके साथ चली जा रही हैं। न भेड़ों को भय है न वह कुछ... वह बड़ा हैरान हुआ। उसने कहाः यह क्या मामला हो गया? यह तो कभी देखा नहीं गया। वह भेड़ों के झुंड पर हमला किया उसको पकड़ने के लिए। वह सारी भेड़ें भागीं। वह सिंह भी भागा जो उनके बीच में रहा। वह सिंह उसका पीछा किया। बामुश्किल उसको पकड़ पाया वह पूंछ दबाए हुए पसीने से लथपथ भागा जा रहा था। पकड़ा तो वह गिड़गिड़ाने लगा, मिमियाने लगा, जैसे भेड़ें करती हैं। छोड़ने की प्रार्थना करने लगा। उसने उसे पकड़ा और नदी के किनारे ले गया। वह चिल्ला रहा है कि

मुझे छोड़ दो, मुझे जाने दो, जाकर उस नदी के किनारे खींचा। दोनों ने पानी में झांका। उसने भी झांका जो भेड़ों के बीच में पला हुआ था। वह देख कर हैरान हुआ। जिससे वह भयभीत हो रहा था, उन दोनों के चेहरे एक जैसे हैं। उसने उसकी तरफ गौर से देखा, उसकी पूंछ वापस अपनी जगह खड़ी हो गई, दबी हुई पूंछ न रही। उसने जोर का सिंहनाद किया, वह जो भेड़ बना हुआ था। और वह सिंह बोलाः मैं हैरान था कि तुझे हो क्या गया? उसने कहाः मैं भेड़ों के बीच में पला था, तो मैं समझा, मैं भेड़ हूं। यह तो आज अगर पानी में तुम्हें नहीं देखता, अपना चेहरा नहीं देखता, मिला नहीं पाता तो मुश्किल हो जाती। बात खत्म हो गई। बात खत्म हो गई।
यह जो सारे जीवन की जो प्रक्रिया है वह कुल इतनी है कि अगर किसी व्यक्ति के पास हमें अपना चेहरा देखने का मौका मिल जाए तो बात खत्म हो गई, उससे फिर क्या लेना-देना है। न तो इस सिंह को उसके सिंह जैसा चेहरा बनाना है अब, न उसके पद चिन्हों पर चलना है, न कोई मतलब है। वह बात खत्म हो गई। एक भ्रम था इसका, वह टूट गया। मेरा मतलब समझे न आप? तो मेरी तो सारी कोशिश इतनी ही है कि कुछ भ्रम हैं हमारे मन में, वे टूट सकें। और वे आपके द्वारा टूट सकें। मैं उनको तोड़ दूं, तो कोई मूल्य नहीं है। वह सिंह कितना ही उसको मार ठोंक करता और समझाता-बुझाता कि नहीं तू सिंह है और उपदेश देता, और बड़े उद्धरण देता और सब तरह के सिद्ध करता, उससे कोई मतलब नहीं था। वह कहता, बिल्कुल आपकी बात ठीक लगती है, लेकिन हूं थोड़ी ही। वह यही कहता कि आपको बात ठीक लगती है लेकिन मुझे छोड़िए, मुझे जाने दीजिए, मेरे साथ वह सब चले जा रहे हैं। मैं मुश्किल में पड़ गया हूं। मुझे छोड़िए। आप सब ठीक कहते हैं, लेकिन मुझे छोड़िए, वह कहता। यह सवाल नहीं है।

प्रश्नः ठीक पहचान लिया कि यह रास्ता ठीक है और यह बुरा। यदि हम ठीक रास्ते पर चल ही न पाते हों?

उसका मतलब ही यह हुआ कि तुम नहीं ठीक से पहचानते, नहीं ठीक से पहचान रहे। क्योंकि ठीक से पहचान लेने और चलने में कभी भेद नहीं होगा। लेकिन यह जो हमारी गलतियों में से बुनियादी गलती हैं--एक चीज हमें तर्कयुक्त, बिल्कुल ठीक लगती है, बुद्धिगत रूप से बिल्कुल ठीक लगती है तो समझ में आती है। उसके विरोध में हम कुछ नहीं कह सकते, वह बात बिल्कुल ठीक मालूम पड़ती है। इससे हम समझते हैं कि हमने ठीक से समझ लिया है बुद्धि हमारे व्यक्तिगत का बड़ा छोटा सा हिस्सा है। वह हमारे सारे व्यक्तित्व को चलाने वाली चीज नहीं है। तो बुद्धि को समझना आ गया, और बुद्धि छोटी सी चीज है, सारा व्यक्तित्व बहुत बड़ी चीज है। और सारे व्यक्तित्व को समझ कर कोई पता नहीं चलता। तो समझते वक्त तो सिर्फ बुद्धि समझ लेती लेकिन करते वक्त पूरा व्यक्तित्व काम कर रहा है। तो सब दिक्कत पड़ जाती है। पूरा व्यक्तित्व कहता है, यह मामला नहीं चलेगा, करना ऐसा पड़ेगा। तब फिर कठिनाई शुरू होती है। तब होता क्या है कि जिसको हम अभी बुद्धि के द्वारा समझ कहते हैं, मात्र बुद्धि के द्वारा समझ, वह पूरी समझ नहीं है, गहरी समझ नहीं है। पूरे व्यक्तित्व की भी समझ होती है।
फिर जैसे मैं आपसे एक बात कह रहा हूं। मैंने जो बात कही वह ज्यादा से ज्यादा आपकी बुद्धि तक जा सकती है क्योंकि कही गई बात बुद्धि से गहरी नहीं जाती। जा भी नहीं सकती। दोनों बुद्धि से जाता है, बुद्धि तक छीना जाता है, वह आपकी बुद्धि में बिल्कुल समझ में आ गई। आपके सिर ने वह बात पकड़ ली और आप चल पड़े। इतने से बात पूरी नहीं होती। जो मैंने आपसे कहा वह अभी बुद्धि ने समझा। अब इसको अत्यंत शांत अवस्था में, जहां बुद्धि एकदम शांत हो जाती है, मौन हो जाती है, उस लाइसेंस में फिर इसको देखना और जानना इस बात को कि जब शांति में, परिपूर्ण शांति में--जिसको मैं ध्यान कहता हूं, उस ध्यान में जब यह बात फिर आपके खयाल में पूरी स्पष्ट प्रकट हो तो वह आपके पूरे व्यक्तित्व में प्रवेश हो जाती है और वह आपकी समझ होगी, फिर उसके विपरीत आप नहीं जा सकते।

तो एक तो समझना है बुद्धि और, और समझना है परिपूर्ण व्यक्तित्व को। और परिपूर्ण व्यक्तित्व जब बिल्कुल शून्य होता है तब समझता है, उसके पहले नहीं समझता है। तो जो मैं कहता हूं, वह तो चिंतन हुआ आपका। उस बात का चिंतन हुआ फिर आप यहां से घर की तरफ गए तो आपने उस बात का थोड़ा मनन किया और उसको लगा कि यह बिल्कुल ठीक है। लेकिन यह निदिध्यासन नहीं हुआ। निदिध्यासन तो तब होगा जब कि वह बात आपने सुन ली, समझ ली, विचार कर ली। फिर अत्यंत शून्य में उस बात को देखने का प्रयोग किया। इतने शांत और शून्य होकर सिर्फ होश रह गया है, न और कोई चिंतन रहा, न कोई मनन रहा। उस शून्य में जब किसी सत्य की झलक मिलेगी तो वह पूरे प्राणों के कोने-कोने तक प्रविष्ट हो जाती है। बिजली की तरह सब तरफ दौड़ रहा है। फिर आपका व्यक्तित्व समझ से भर गया। अब आप सोते, उठते, बैठते, होश में बेहोशी में जो भी करेंगे वह पूरे व्यक्ति से निकलेगा। वह पूरे व्यक्तित्व से निकलेगा। और तब, वह जो अभी फासला दिखाई पड़ता है कि ठीक बात लगती है, लेकिन करते उलटा हैं, वह फासला सब खत्म होगा। इसलिए अकेले समझने पर मेरा जोर नहीं है ध्यान पर मेरा भारी जोर हैं कि वह ध्यान में प्रविष्ट होना चाहिए वह बीज, जो हमारी समझ भर में प्रविष्ट होकर रह जाते हैं।
समझ की एक अपनी जगह है, ध्यान की अपनी जगह है। ध्यान पूरे व्यक्तित्व में ले जाता है उन चीजों को।

प्रश्नः आखिर जिस चीज को हम समझ लेते हैं, उसे हम करते नहीं हैं।

असल बात यह है कि ऐसा भी है, जिसके बाबत भी समझते हैं वैसा नहीं है-- सिगरेट पीने से कैंसर से आदमी मरता है टी. बी. होती है, कैंसर होता है, फलां- ढिकां होता। कितने लोग सिगरेट पीते हैं। उसमें भी निकोटिन है, जहर है, वह पायजन फैलाता है। कितने लोग पीते हैं। कोई कहता है शराब पीने से यह नुकसान होते हैं कितने लोग पीते हैं, और हजार तरह के जहर लोग पीते हैं। और जानते हुए भी पीते हैं लेकिन इससे कुछ समझा लेने से कुछ होता नहीं। एक डाक्टर अपने मरीज को समझाता रहता है कि सिगरेट नहीं पीना, यह बहुत बुरा है। और बैठ कर सिगरेट पी रहे हैं। वह समझा रहा है कि इससे कैंसर हो जाएगा। फलां-ढिंका हो जाएगा। और वह सिगरेट पी रहा है।
यह तो हमको खयाल में आता है कि जिस चीज को हम समझ लेते हैं, वैसा हम नहीं करते हैं, ऐसा नहीं है। समझती बुद्धि है, दूसरा कुछ नहीं होता। पूरे व्यक्तित्व में दूसरी मांगें हैं। बुद्धि समझती है कि हां भाई, सिगरेट पीने में जहर है। लेकिन पूरा व्यक्तित्व कहता है, बिना पीए हम सुस्त हो जाते हैं। बिना पीए से नहीं चलता। इतना छोटा जहर है कि बीस साल में मरेगा आदमी और अभी सिगरेट पीने वाले मर नहीं जाते इतने सिगरेट पीने वाले बुड्ढे हो जाते हैं। यानी कहां तक सच है, कहां तक नहीं है सच। और अगर मान लो बिना सिगरेट पीए, बिना शराब पीए, बिना मांस खाए, बिना रंग नाच किए जी भी लिए तो जी कर भी क्या करोगे? वह सारा व्यक्तित्व तो यह कहता है। करेंगे क्या? यह भी ठीक है कि नहीं सिगरेट पीएंगे, नहीं शराब पीएंगे, फिर करेंगे क्या? सवाल यह है कि फिर जिंदगी का क्या करेंगे? और जिंदगी चली जाएगी। और कोई ऐसा भी नहीं कि अमर हो जाएंगे सिगरेट नहीं पीएंगे तो। कोई पांच साल पहले जाएगी, कोई पांच साल पीछे जाएगी। तो यह सिगरेट पीने से छूटता है तो छोड़ें यह काहे को परेशानी छोड़ें। पूरा व्यक्तित्व और बातें समझाता है और बुद्धि कहती है इसमें निकोटिन है, फलां है, ढिंका है। पूरा व्यक्तित्व दूसरा दलील नहीं देता है। फिर आप अकेले पड़ जाते हैं, वहां कोई नहीं है, तो सिगरेट साथी हो जाती है। सोचते हैं आज तो पी सकते हैं, कल देखा जाएगा। एक दिन में कौन मर जाता है! तो सारा व्यक्तित्व और दलीलें देता है। मेरा कहना है कि किसी भी चीज की पूरी समझ पूरे व्यक्तित्व तक परिवर्तन लाती है, नहीं तो नहीं लाती है।

प्रश्नः जैसे आग में जल जाए तो आग समझ लाती है बहुत जल्दी। उसके लिए ध्यान में जाने की बात नहीं है?

यह जो आग में लग कर समझ में आता है न, वह भी अनुभव से समझ में आता है। जब
आग में हाथ लगता है तब करीब-करीब आप ध्यान की अवस्था में हो जाते हैं। न कोई विचार रह जाता है, न कुछ खयाल रह जाता है, माइंड पूरा साइलेंट हो जाता है। एक अंगारा लाकर आपको हाथ में रख देगा, आपके सब विचार विलीन, सब समस्याएं दूर। अंगारा रह गया और आप रह गए। तो यह करीब-करीब मेडिटेशन की हालत शुरू हो गई और इस वक्त जो आपको दिखाई पड़ जाएगा, वह पूरे व्यक्तित्व को दिखाई पड़ गया।
मेरा मतलब क्या है ध्यान का? मेरा मतलब है कि चित्त इतना शांत है उस क्षण में, जो और कुछ भी नहीं रह गया, एक ही चीज रह गई दिखाई पड़ने को। तो टोटल अटेंशन मिल गई उस चीज को। अब एक आदमी आपके हाथ में अंगारा रख दे और पीछे से बंदूक लेकर खड़ा हो जाए तो हो सकता है कि अंगारे का आपको पता भी न चले कि अंगारा हाथ में लग गया। एक आदमी क्रिकेट खेल रहा है या हाकी खेल रहा है। नाखून उखड़ गया है, खून बहा जा रहा है और वह खेला चला जा रहा है और उसको पता भी नहीं है कि नाखून खून लगा गया कि टूट गया, क्या हो गया। खेल बंद हो गया घंटे भर बाद, तब लोग उसको कहते हैं तुम्हारे पैर से खून बह रहा है। अरे! वह कहता है, मुझे पता नहीं चला कि खून बह रहा है। अक्ल से नहीं मिल सकती वह पूरी बात तो वह दिखाई नहीं पड़ी बात, वह पड़ी रह गई बात। पूरा व्यक्तित्व जिस चीज के प्रति अटेंटिव हो जाता है वह चीज मेडिटेशन हो गई। तो जीवन के खतरों में हम मेडिटेशन की हालत में पहुंच जाते हैं। इसलिए फिर दुबारा नहीं करते।
जीवन के जो और महत्वपूर्ण मसले हैं, जो हमें इतनी खतरनाक स्थिति में कभी नहीं डालते हैं, उनके बाबत भी जब हम इतने ध्यानावस्थित हो जाते हैं, देखेंगे तो वहां भी इतना ही फर्क पड़ जाएगा--इतना ही फर्क--इतना ही जितना आग में जलने से पड़ता है। इससे भिन्न नहीं, बिल्कुल इतना। यह फर्क आग के जलन का नहीं है, यह फर्क टोटल अटेंशन का है। तो जब भी पूर्ण ध्यान किसी तथ्य को उपलब्ध होता है तो जीवन में क्रांति हो जाती है। मेरा मतलब समझे न आप! वह तभी हो जाती है। लेकिन हमें दिखाई नहीं पड़ता।
जैसे अभी इसकी पत्नी चल बसी-घर में कोई आदमी चल बसता है वह तो चल बसा,
हम रोने धोने में लग गए तो उसके चल बसने का तथ्य अंगारे की तरह हमारे ऊपर पड़ना चाहिए था, वह एक तरफ पड़ा रह गया। हम अपने रोने-धोने की धुन में पड़ गए हम रोने-धोने में लग गए, हमने एक नया काम चुन लिया। तो उसकी मृत्यु जो अंगारे की तरह हमको छेद देती है प्राणों तक वह फिजूल हो गई। दस पंद्रह दिन बाद हम रो-धो कर ठीक-ठाक हो जाएंगे, फिर दुनिया वैसी ही चलने लगेगी। उस आदमी के जाने का हम पर कोई बुनियादी अंतर नहीं पड़कर रह जाएगा। लेकिन अगर उसको मरते वक्त हम रोए नहीं, घबड़ाएं नहीं, परेशान नहीं हुए, और उसकी मृत्यु अंगारे की तरह हमारे हाथ पर रख गई और सारे प्राणों में, पूरी शांति में इस तथ्य का जान लिया तो आप दूसरे आदमी हो जाएंगे। आप आदमी दूसरे हो जाएंगे कल से आपका जीने का व्यवहार बदल जाएगा। कल से आपके लिए मृत्यु एक गया तथ्य हो जाएगी, जो आपके पूरे जीवन को बदलेगी। परसों आपने जिस तरह किसी से बोला होता आज आप उससे उस तरह से नहीं बोलेंगे, क्योंकि ऐसा तथ्य बीच में आ गया जो कल तक आपको पता नहीं था। रोज घटनाएं तो जिंदगी में घटती हैं लेकिन मेडिटेटिवली हम उन घटनाओं को ले नहीं पाते। बिल्कुल छोटी-छोटी घटना एकदम आपकी जिंदगी को बदलती चली जाएगी न किसी को समझने की जरूरत है न किसी को पूछने की।
अगर वह जो, जिसको मेडिटेशन कहें वह थोड़ी सी खयाल में आ जाए, तो जिंदगी
सब आपसे कह देगी, खुद कह देगी। रोज-रोज कहती है जिंदगी आप से, लेकिन आप सुनने को वहां मौजूद नहीं होते--मौजूद ही नहीं होते। निकलती है बात, चली जाती है पूरा व्यक्तित्व बिना सुना रह जाता है। नहीं तो एक-एक चीज--यह तो बड़ी बात है, घर से कोई चल बसे। एक सूखा पता वृक्ष से गिर जाए और एक आदमी मेडिटेटिवली उसे देख लें। वह बैठा है चुपचाप और देख ले सूखे पते को-- जिंदगी दूसरी हो गई मामला खत्म हो गया। उसे कुछ बात दिखाई पड़ गई कि सूखे पते गिर जाते हैं, और सब पत्ते सूख जाते हैं। कोई पत्ता हमेशा नहीं रहता

है। मैं भी एक पत्ता हूं, आज हूं हरा, कल सूख जाऊंगा गिर जाऊंगा हवाएं उड़ा कर ले जाएंगी। तो जहां सूखे पत्ते की तरह उड़ जाना है हवाओं में, वहां क्या- क्या पागलपन करूं, किसलिए करूं, किसके लिए करूं! किस अर्थ के लिए करूं! क्यों चिंतित, क्यों परेशान, क्यों हैरान? तो चीजें सूखे पत्ते से भी हो सकती है? कहां से सकती है? अगर ध्यान में जीवन को पकड़ा जा सके, कहीं से भी किसी भी कोने से तो आदमी वहीं से बदलने लगता है, धार्मिक होने लगता है।
तो मेरा जोर कुल इतना है कि जीवन के प्रत्येक तथ्य को हम जरा होश से, ध्यानस्थ होकर मेडिटेटिवली देखने की क्षमता को विकसित करते चलें, फिर सब होगा। और फिर यह समस्या खड़ी नहीं होगी कि मेरी बुद्धि यह कहती है, और मैं ऐसा करता हूं, क्योंकि तुम और बुद्धि दोनों अलग हो नहीं। लेकिन तुम जब पकड़ते हो तो अलग-अलग पकड़ते हो, इसलिए अलग-अलग बने रहते हो, इकट्ठा पकड़ने की बात है।
एक ईसष के फेबल्स में एक छोटी कहानी है कि एक भेड़िया है, वह बड़ी बहादुरी हांकता रहता है कि मुझसे तेज कोई दौड़ नहीं सकता। मेरे चंगुल में जो शिकार फंस जाता है कभी बचता नहीं। वह भेड़ियों में हांकता रहता है अपनी बातें। कोई आदमी हांकता हो ऐसा नहीं, जानवर भी हांकते हैं इस तरह की बातें कि मैं ऐसा न रहा। एक दिन वह, एक हिरन का छोटा सा बच्चा दिख गया तो और दो-चार दस भेड़िए, तो वह कहता है देखें तुम्हारी बहादुरी, देखें जरा दौड़ को। क्योंकि हिरन तो बड़ा तेज दौड़ता है। जरा देखें, इसे पकड़ो तो वह भेड़िया भागा। बाकी भेड़िए उसके साथ भागे देखने के लिए लेकिन मीलों का चक्कर हो गया। वह हिरन का बच्चा तो हवा होकर भागा और वह भेड़िया तो पकड़ नहीं पाता है। वह छलांगें लगा रहा है लंबी-लंबी। वह तो झाड़ियों से आगे लगाए जा रहा है, वह तो बिल्कुल तीर हो गया। आखिर भेड़िया थक गया और उसके मित्र सब हंसने लगे। उन्होंने कहाः कहां गई तुम्हारी बहादुरी? उसने कहाः यह बहादुरी का सवाल नहीं है। मैं केवल भोजन के लिए भाग रहा हूं, वह अपने पूरे प्राणों के लिए भाग रहा है। यह बहादुरी का सवाल नहीं है। यह मामला फर्क का इसलिए पड़ रहा है, मेरा तो सिर्फ,, ज्यादा से ज्यादा दोपहर का भोजन है, और उसके लिए पूरे प्राण! तो उसकी जो गतिमयता है वह उसकी टोटल बीइंग से आ रही है, उसके पूरे प्राणों से आ रही है। और मेरे लिए मामला सिर्फ इतना है कि मिल गया तो भोजन हो जाएगा, नहीं तो दूसरा कोई देखेंगे। तो इसको तुम यह मत समझना कि यह कोई मेरी ताकत का परीक्षण हो गया। मेरी ताकत का परीक्षण तो तब हो जब कि मेरे पीछे भी कोई जान लेकर पड़ा हो और उस वक्त तब तुम देखना कि मैं उससे भी आगे निकल जाऊंगा। हार रहा हूं, इसलिए कि मेरे लिए ज्यादा मामला नहीं है, उसके लिए पूरा प्राण का मामला है।
मेरा मतलब समझे न? तो हमारे जीवन में तक तब मामले नहीं बनते हैं और गति नहीं आती, इटेंसिटी नहीं आती जब तक कोई चीज हमारे पूरे प्राणों के लिए मामला नहीं बन जाए। मेरी आप बात सुनते हैं, एक मसला आपको बन जाता है वह मसला बिल्कुल बौद्धिक है। वह दो मिनट में विलीन हो जाता है। क्योंकि वह आपके पूरे प्राणों की जरूरत नहीं है। उसको अगर पूरे प्राणों की जरूरत की तरह आप प्रवेश देंगे तो वह कल का सवाल नहीं है, वह यही हो जाएगा फर्क।
मैं पिछले वर्ष आया तो कुछ बात कर रहा था, दक्षिण में एक साधु है, उसका
एक बड़ा आश्रम है। और एक संन्यासी भी यहां दीक्षित हुआ है। वह युवा संन्यासी बड़ा विवादी है। छोटी सी बात पर विवाद कर लेता है और इतना खंडन-मंडन का शौक है उसे कि चौबीस घंटे उसके इसी में व्यतीत होते है। फिर कोई एक मेहमान ठहरा है संन्यासी और वह उससे विवाद में पड़ गया है युवक, और दो-ढाई घंटे तक उसके सारे विचारों का खंडन किया। एक-एक खाल उखाड़ दी, उसके बाल के टुकड़े कर डाले। वह संन्यासी पराजित भाव से चला गया। उसके गुरु ने, उस युवक के गुरु ने कहा कि तू यह कब तक बकवास करता रहेगा? तू तब तक बोलता रहेगा? तुझे कब दिखाई पड़ेगा कि वाणी व्यर्थ है; उसका कोई अर्थ नहीं है? इस विवाद का कोई सार मिलता नहीं। तू कब तक यह बंद करेगा, यह बोल? यह युवक हंसने लगा। और उसका गुरु पूछने लगा कि तू बोल, कब बंद करेगा? लेकिन फिर वह बोले नहीं इसका भी उत्तर नहीं दिया उसने। इस बात का भी नहीं दिया। एक दिन बीत गया, दो दिन बीत गया, उसका गुरु उसे हिलाने लगा कि तू बोलता क्यों नहीं है? लेकिन

वह हंसता और चुप रह जाता। तब दो-चार दिन में पता चला कि वह उत्तर नहीं देगा। बात समझ में आ गई, खत्म हो गई बात, अब इसका भी क्या उत्तर देना है? क्योंकि बोलने के लिए क्या समय गंवाना? अब इतनी वाणी भी क्यों खर्च करनी? बात खत्म हो गई। उसका गुरु तो हैरान हो गया। तीस साल तक वह युवक नहीं बोला। दूसरे लोगों ने कहाः यह तो आदमी पागल मालूम होता है क्योंकि जब बकवास करता था तो दिन-रात बकवास करता था, बोलता तो नहीं बोलता।
उसके गुरु ने कहा कि ऐसे पागल दुनिया में होते हैं, बस वे ही तो कुछ उपलब्ध कर पाते हैं। बाकी कोई उपलब्ध नहीं कर पाता। बड़ा अदभुत आदमी है। मैं भी नहीं सोचता था। मैं तो इससे पूछ रहा था, कब बंद करेगा? मगर मेरी पूछने में भी भूल थी क्योंकि अगर दिखाई पड़ जाएगा। तो अभी बंद करेगा। कब का क्या सवाल है? और नहीं दिखाई पड़ेगा तो कभी भी क्यों बंद करेगा? मैं भी कुछ गलत पूछ रहा था और इस आदमी ने मुझे बताया कि मेरा प्रश्न ही गलत था। मैं इससे पूछता था कि कब बंद करेगा? और वह हंसने लगा। और कितना मेरी मजाक हो गई उसके हंसने में कि मैं पूछता हूं कि कब बंद करेगा! अब वह बंद कर चुका है। बात खत्म हो गई, उसको बात दिखाई पड़ गई।
अब यह किसी क्षण, में किसी मेडिटेशन के मूवमेंट उसको यह बात दिखाई पड़
गई तीर की तरह, कि ठीक है, क्या फायदा है किसी से विवाद करने में। यह दिख गया। यह समझ नहीं है, यह अब इंटलेक्चुअल अंडरस्टैंडिंग नहीं रही, अब यह टोटल बीइंग की अंडरस्टैंडिंग हो गई तो यह प्राणों तक छिद गई। बात खत्म हो गई। अब उसके पूछने का क्या मतलब रहा? वह गुरु को पता ही नहीं है कि यह बात बदल गई। उसका गुरु उसको अपना गुरु मानने लगा, उस युवक को अपना गुरु मानने लगा और लोगों में कहता अब यह मेरा शिष्य नहीं रहा, अब यह मेरा गुरु हो गया है, क्योंकि मैं इससे पूछता था कि कब? और यह हंसता था। इसने बंद ही कर दिया था। मैं फिर भी पूछे जा रहा था तीन दिन तक कि तू कब बंद करेगा? तू बोलता क्यों नहीं? मैं इससे यह पूछे चला जा रहा था। और यह हंसता था और यह मन में क्या सोचता होगा कि यह आदमी कैसा पागल है! अब यह क्या पूछ रहा है? जो बात हो गई, वह हो गई।
यह जो... इसकी खोज में लगे रहना चाहिए कि जिंदगी मैं मेडिटेशन का मूवमेंट कैसे आ सकता हैं। और उस वक्त जो भी समझ आएगी, उस समझ में और आपके आचरण में कभी भी भेद पड़ने का नहीं है। वे एक ही चीज के दो नाम हैं, वह समझ और वह आचरण। वे एक ही चीज के नाम हैं। दो सवाल नहीं है। जब तक सवाल है तक तक यहीं सवाल है असल में कि हम जो भी पकड़ते हैं, वह नॉन-मेडिटेटिव मूवमेंट में पकड़ी गई बातें हैं। वह बुद्धि तक जाती हैं, उससे आगे नहीं जाती हैं।

प्रश्नः आप कहते हैं शून्य हो जाना चाहिए। उसके बाद क्या करने के लिए शून्य में हो जाना चाहिए? किसलिए शून्य में जाना चाहिए?

स्वस्थ होने के लिए, शांत होने के लिए, आनंदित होने के लिए। अभी अस्वस्थ हैं, अशांत हैं, दुख में हैं। इस दुख से, इस पीड़ा से, इस अंधेरे से ऊपर उठाने के लिए। लेकिन कभी कोई आदमी नहीं पूछता कि मैं बीमार हूं तो मैं स्वस्थ क्यों होऊं? स्वस्थ होकर मैं क्या करूंगा? कोई आगे पूछता ही नहीं। किसी आदमी ने कभी पूछा है कि स्वस्थ मैं किस लिए होऊं? कहता है, मुझे स्वस्थ होना है। बीमारी मुझे नहीं चाहिए। लेकिन अगर हम उससे पूछने जाए कि क्यों बीमारी नहीं चाहिए? स्वस्थ होकर क्या करेगा? तब भी वह कहता है, इसका कोई सवाल नहीं है। मुझे स्वस्थ होना है। क्यों स्वस्थ होने के आगे मंजिल नहीं है, स्वास्थ्य मंजिल है। स्वास्थ्य का होना, जो वेल बीइंग है, वह आनंद है, उसके आगे कोई मंजिल नहीं है। सवाल नहीं है उसके आगे कि क्या करूंगा? सवाल यह है कि स्वस्थ हो जाने के लिए सब करना है। सब करना स्वस्थ हो जाने के लिए है। एक आदमी पूछ रहा है कि शांत होकर क्या करूंगा? तो उसका पता ही नहीं है, वह शांत का मतलब नहीं जान रहा है। पूछता है, शून्य होकर क्या करूंगा? उसको पता नहीं। वह शून्य का मतलब नहीं समझ रहा है।
शून्य का मतलब है, आत्मिक स्वास्थ्य। जब तक हम उलझे है मन में बहुत सी चीजों में, तब तक हम अस्वस्थ हैं। जब चित्त बिल्कुल शून्य हो गया... एक आदमी

स्वास्थ्य को उपलब्ध होता है, उसके आगे कोई मंजिल नहीं है क्योंकि उसके स्वास्थ्य के क्षण में सब जान लिया जाता है, और सब पा लिया जाता है। इसलिए आगे क्या करेंगे, सवाल नहीं है। यह सवाल ही नहीं है और यह कभी किसी को जो शून्य में पहुंचता है उठता नहीं है। लेकिन उसके पहले हम हिसाब-किताब लगाते हैं। तो अभी इसकी फिकर ही न करें कि वहां पहुंचकर क्या करेंगे। अभी तो इसकी फिकर ही न करें कि जहां आप हैं, वहां आप क्या कर रहे हैं।

प्रश्नः जिस अर्थ में आप बात कर रहे हैं वह शरीर से भिन्न है या?

क्या करिएगा इसको सोच कर अभी से? और मैं कहूंगा, उससे आपको क्या पता चलेगा? फिर एक सिद्धांत बन जाएगा। मैं कह दूंगा, वह एक सिद्धांत बन जाएगा।

प्रश्नः जैसे आपको सुनने से हम लोगों को कोई-कोई बात की प्रतीति होने लगी है, तो इस तरह की कुछ प्रतीति हो जाए?

मेरे सुनने से आत्मा की प्रतीति नहीं हो सकती। मेरे सुनने से आत्मा
तक किन चीजों के कारण हम नहीं पहुंच पाते, इसकी प्रतीति हो सकती है। और किन चीजों से हम पहुंच सकते हैं इसकी प्रतीति हो सकती है। आत्मा की प्रतीति नहीं हो सकती। आत्मा की प्रतीति नहीं हो सकती। आत्मा की प्रतीति तो जो मैं कह रहा हूं, उस अवस्था में पहुंचेंगे तो होगी। वह मेरे सुनने से नहीं हो सकती। और मेरे सुनने से हो जाएगी तो वह फिर झूठी होगी। वह सिर्फ इंटेलेक्चुअल होगी, बुद्धि की होगी। फिर एक सिद्धांत बन जाएगा। आपके मन में कि मैं ऐसा-ऐसा कहता हूं आत्मा को, और आत्मा इस तरह की है। इसलिए कोई डिफाइन करने की कोशिश न करिए कि शरीर अलग है कि आत्मा अलग है कि काली है कि पीली है कि किसी है। क्योंकि जितनी डेफिनिशन हैं, जितनी परिभाषाएं है, कोई भी परिभाषा जीवन के परिपूर्ण सत्य को नहीं छूती है, असमर्थ हैं छूने में। तो उसे अनुभवों में तो छुआ जा सकता है, लेकिन परिभाषाओं में नहीं।
तो यह पूछिए मत। इतना ही जानिए, यानी मेरी एंफेसिस इस बात पर है--इतना जानिए कि मैं अज्ञान में हूं, मैं दुख में हूं, मैं अशांति में हूं। अशांति कैसे हट सकती है, दुख कैसे हट सकता है, अज्ञान कैसे हट सकता है, इसको समझने की कोशिश करिए। जब दुख हटेगा, अज्ञान हटेगा, अशांति हटेगी, तब जिसका साक्षात होगा वह आत्मा है। और उस आत्मा की कोई परिभाषा संभव नहीं है। कोई बातचीत करना संभव नहीं है कि क्या होगा उस अनुभव में। वह अनुभव ही है। वह अनुभव ही कहेगा कि क्या हुआ है लेकिन हमारे मुल्क में, सारी दुनिया में ऐसा चलता रहा है कि हम हर चीज की परिभाषाएं करते रहे हैं कि आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, क्या नहीं है, क्या नहीं है। हम परिभाषाएं करते रहे हैं। और वे खूब परिभाषाएं हमको सब मालूम हैं। यह भी नहीं है कि नहीं मालूम है। उससे कुछ हित होता नहीं है। खतरा नहीं है कि उसी परिभाषा को हम दोहराने लगते हैं धीरे-धीरे। और बहुत दिन दोहराने पर ऐसा पता चलने लगता है कि हम जान गए हैं। परिभाषा ही दोहराने पर पता लगेगा।

प्रश्नः निर्विचार बनने के बाद... कोई आदमी निर्विचार बन गया, आत्मा बनता है, उसका ध्येय गया पुनर्जन्म में कोई आगे करने के लिए भी यही है?

ये सारी बातें जो हैं न, बड़ा मजा है कि ये सारी बातें ऐसी हैं कि एक अंधा आदमी पूछता है कि मान लो कि मेरी आंखें खुल गई है और प्रकाश मिल गया है, तो मेरे हाथ की लकड़ियां, जिसको टेक-टेक कर मैं चलता हूं, इसका क्या होगा? ये बचेंगी कि छूट जाएगी? अगर यह छूट जाएंगी तो इसके बिना तो मैं चल ही नहीं सकता हूं। फिर तो मैं टकरा कर गिर जाता हूं, तो आप पहले यह बताइए कि मेरी आंखें ठीक हो जाएगी तो मेरी बैसाखी का क्या होगा, मेरी लकड़ी का क्या होगा? इसके बिना तो मैं चल ही नहीं सकता। यह छूटेगी कि बचेगी? हम उसे क्या कहेंगे? हम उसे कहेंगे कि तुझे पता नहीं है कि आंख खुलने का क्या अर्थ

होता है। बैसाखी का कोई संबंध ही नहीं रह जाता। बैसाखी का संबंध ही तेरे अंधेपन से है। आंख से उसका कोई संबंध नहीं है।
जिसको हम पुनर्जन्म कहते हैं, जिसको हम मृत्यु कहते हैं, जिस दिन आत्मा का अनुभव होता है, उस दिन न तो कोई मृत्यु है और न कोई पुनर्जन्म है। क्योंकि जो मरता ही नहीं उसको कोई जन्म भी नहीं है। लेकिन वह उस दिन दिखाई देता है। अभी तो हमारे लिए प्रॉब्लम्स है कि वह क्या होगा, वह क्या होगा! ये जितने प्रॉब्लम्स हैं, जितनी समस्याएं हैं, हमारे अंधेपन से ही पैदा होती हैं और हम अंधेपन के रहते ही इनको हल करने की कोशिश करते हैं। यह हल हो नहीं सकती। यह जो कठिनाई हमारी है, वह हल हो नहीं सकती। तो जो हम प्रश्न पूछते हैं वह ऐसे, जैसे अंधा आदमी पूछता है। वह पूछता है कि प्रकाश समझ लीजिए कि मिल गया, तो प्रकाश का आकार क्या होता है? हम उससे क्या कहेंगे? प्रकाश का कोई आकार होता है। वह अंधा आदमी पूछता है कि फिर प्रकाश का कोई वजन होता है कि नहीं होता है? कितना वजन होता है। हम कहेंगे कि बड़ी मुश्किल की बातें कर रहे हो। प्रकाश का कोई वजन नहीं होता। वह अंधा आदमी कंफ्यूजन में पड़ेगा, हमारी बातें सुन कर।

प्रश्नः क्योंकि व्याख्या तो है ही नहीं उसकी।

नहीं, कोई व्याख्या नहीं है। अनुभव ही। अनुभव ही।

प्रश्नः और देहावसान के साथ आत्मा भी खत्म हो जाती है?

फिर वही बात! मजा यह है कि हमें अभी पता नहीं है कि भीतर क्या है, और हम पूछते हैं देहावसान के बाद... । अभी देह के रहते हुए ही, अभी क्या भीतर है इसका पता लगाइए। देहावसान होगा तब आपको पता चलेगा कि क्या हो रहा है; बचता है कि नहीं बचता है। कभी न कभी देहावसान होगा, तो उससे पहले तो उस प्राब्लम को क्यों पकड़ते हैं जब कि देह है? तो अभी तो पता लगाइए कि देह के भीतर क्या है! तो अभी इसकी फिकर छोड़ कर हम सोचें कि देहावसान होता है तब क्या होता है। देहावसान जब होगा तब आप मौजूद रहोगे, देह के भीतर तो आपका पता चलेगा कि क्या होता है। और आपके देहावसान पर ही आपको पता चलेगा, किसी दूसरे के देहावसान पर चल नहीं सकता।

प्रश्नः जीवन में कोई भी ध्येय तो चाहिए न?

क्यों चाहिए? क्या जरूरत है?

प्रश्नः तो फिर शून्य होने की जरूरत क्या है? फिर हम बुरे काम क्यों न करें? फिर खून क्यों न करें?

आप कर रही रहे हैं। क्यों न करें का सवाल ही नहीं है, कर रहे हैं क्यों
न करें का मतलब तो यह है कि आप नहीं कर रहे हैं। मैं भी यही कहता हूं, आप कर ही रहे हैं। पूरी तरह कर रहे हैं। खून भी कर रहे हैं, बुरे काम भी कर रहे हैं। सवाल कुल इतना है कि यह करने में आप उस व्यवस्था में नहीं हैं जहां कि आप पाए कि मैं पहुंच गया। बेचैनी बनी हुई हैं, बेचैनी बनी हुई है। कर भी रहे हैं और लग रहा है, नहीं भी करना चाहिए। कर भी रहे हैं तो दुख झेल रहे हैं और नहीं कर रहे हैं तो दुख झेल रहे हैं। तो एक डिसकंटेंट पूरे घेरे हुए हैं। यह जो डिसकंटेंट है, यह जो अतृप्ति है, यह जो पीड़ा घेरे हुए हैं, इस पीड़ा के बाहर आप होना चाहते हैं तब तो पूछने का सवाल नहीं है। आप होना चाहते हैं इसके बाहर, इसलिए आप खोज करते हैं निर्विचार की। निर्विचार में पहुंचने का कोई लक्ष्य नहीं है सिवाय इसके कि जहां आप जहां है वहां होने का कोई अर्थ नहीं है।
मेरा मतलब, हम यहां बैठे हैं। इस घर में आग लग गई है, और मैंने कहा, आग
लग गई, हम सब तड़फन लगे। मैंने कहा चलो हम बाहर निकल चलें। आप पूछने लगे,

बाहर पहुंचने का लक्ष्य क्या है? क्या मिल जाएगा बाहर जाने से? तो मैं आप से कहूंगा कि अभी हम बाहर गए नहीं, आप बाहर गए नहीं, हमें बाहर का कुछ पता है नहीं। एक बात तय है कि जहां हम खड़े हैं वहां आग लग गई है, वहां हम जले जा रहे हैं, वहां तपे जा रहे हैं। वहां होने का कोई अर्थ नहीं रह गया है। हम यहां से भागते हैं। वहां किसलिए जाते हैं, यह हम पता नहीं, लेकिन यहां से हम जा रहे हैं, उसका हमें पता है कि यहां से हम क्यों जा रहे हैं।
यहां से हम हट कर बाहर पहुंचेंगे तो वहां बगिया है। वह बगिया मिल जाएगी, धूप मिल जाएगी, वह खुला आकाश मिल जाएगा, ठंडी हवाएं मिल जाएंगी और यहां, यह जो आग की तपिस थी, उससे हम बाहर जो जाएंगे। लेकिन यहां से आते वक्त हमारा कारण वहां कुछ है, वह नहीं है, यहां कुछ है जो हमें हटा रहा है। यानी हमेशा अगर ठीक से देखें तो जीवन की जो गति है, जहां हम हैं वहां जो अतृप्ति और असंतोष है, वह में हटाता है। जहां हम नहीं हैं, वहां क्या होगा, यह तो हमें पता नहीं है। तो विचार में हम अतृप्त हैं इसलिए निर्विचार की तरफ जाते हैं। अज्ञान में अतृप्त हैं इसलिए ज्ञान की तरफ जाते हैं। अशांति में परेशान हैं इसलिए शांति की तरफ जाते हैं। बीमारी में दुखी हैं इसलिए स्वास्थ्य की तरफ जाते हैं। यह जाना जो है किसी अट्रैक्शन को नहीं है जितना किसी रिपल्शन का है। अगर इसे ठीक समझें तो कोई विकर्षण है, जो हमें ले जा रहा है। कोई आकर्षण नहीं है। क्योंकि आकर्षण तो तब हो सकता है जब हम जानते हों कि वहां क्या है!
लेकिन आप पूछते हैं कि वहां का आकर्षण बताइए कि वहां क्या है! उससे मैं क्या समझ लेता हूं? मैं क्यों जिद्द करता हूं? मैं नहीं कहता वहां का आकर्षण। मैं इसलिए जिद्द पकड़ लेता हूं कि मैं जानता हूं जो आदमी पूछता है, वहां का आकर्षण क्या है, उसे वहां का विकर्षण नहीं दिखाई पड़ रहा है। इसलिए वह वहां का आकर्षण पहले पूछना चाहता है कि वहां क्या मिलेगा। यहां की स्थिति दुखपूर्ण है, यह उसे दिखाई नहीं पड़ती। वह नरक में खड़ा है, यह उसे दिखाई नहीं पड़ रहा है। तो वह पूछता है कि पहले हमें यह बताइए कि वहां क्या मिल जाएगा। तो मैं समझ गया एक बात कि उसे यहां की, यहां की स्थिति की पूरी तस्वीर उसे दिखाई नहीं पड़ रही है। यहां का पूरा नरक उसे दिखाई नहीं पड़ रहा है इसलिए वह पूछता है कि वहां क्या है? अगर यहां का नरक पूरा दिखाई पड़ जाए तो वह नहीं पूछेगा वहां क्या है? वह कहेगा, किसी भी भांति मैं यहां से उठ जाना चाहता हूं, यहां से अलग उठ जाना चाहता हूं। मुझे कोई फिकर नहीं कि वहां क्या है। मुझे वहां से हटना है। यहां से मैं कैसे हटूं? वह यह पूछेगा लेकिन जब हम पूछते हैं, वहां का आकर्षण क्या है, तो मेरे सामने जो सवाल खड़ा हो जाता है वह यह, कि फिर अब आपके लिए जरूरत इस बात की है; कि आपको आपकी पूरी स्थिति का पता बताया जाए कि स्थिति कैसी है।

प्रश्नः बाहर जाने का लक्ष्य हो गया न, यहां आग लगी तो!

बाहर जाने के लिए नहीं है, सिर्फ भीतर से हटने के लिए है। बाहर जाने का
तो तब हो सकता है जब बाहर का पता हो। कोई आदमी दुनिया में परमात्मा की तरफ नहीं जाता। क्योंकि परमात्मा की तरफ तब जा सकता है जब उसे परमात्मा का पता हो। और पता ही हो तो जाने की जरूरत नहीं रह जाती। हर आदमी जीवन की पीड़ा और दुख से जाता है। यानी यह जो है, दिस मूवमेंट इ.ज नॉट फॉर समथिंग, फ्रॉम समथिंग यह जो है, सारा का सारा मूवमेंट जो है। फ्रॉम समथिंग, किसी चीज से है, किसी चीज के लिए नहीं है।

प्रश्नः यानी अंधेरे में ही दौड़ना है।

अंधेरे में दौड़ना नहीं, अंधेरे से दौड़ना है। अंधेरे से जो दौड़ेगा, वह अंधेरे से विपरीत दौड़ेगा। अंधेरे से दौड़ने का मतलब यह होता है कि अंधेरे के विपरीत दौड़ेगा। नहीं तो फिर अंधेरे में दौड़ रहा है। और प्रकाश का उसे पता नहीं है। तो वह खोज रहा है, अंधेरे के विपरीत खोज रहा है। शांति का पता

नहीं है। अशांति के विपरीत खोज रहा है, अशांति के बाहर में। तो अशांति के कारण खोजेगा कि क्या-क्या अशांति के कारण हैं, जिनसे मैं अशांत हो रहा हूं! यह दोनों में एप्रोज में क्या फर्क पड़ेगा? जो अब तक की एप्रोज रही है
वह मेटाफिजिकल है। वह पूछती है कि शांति क्या है? मोक्ष क्या है? ईश्वर क्या है, आत्मा क्या है? मेरी जो एप्रोज है वह मेटाफिजिकल नहीं है, वह साइकोलॉजिकल है। मैं यह पूछता हूं, अशांत के कारण क्या है? दुख के कारण क्या है? मोक्ष क्या है, इससे क्या लेना-देना है? बंधन क्या है? तो बंधन अगर मेरी पूरी समझ में आ जाए तो मैं बंधन को तोड़ दूंगा। जो शेष रह जाएगा। वह मोक्ष है। इसलिए मैं उसकी चिंता नहीं करता कि वह क्या है? मुझे बंधन समझ में आ जाए तो मुक्ति तो मिल जाएगी। बंधन तोड़ दिए कि मुक्ति मिल गई। लेकिन पुराना एप्रोज ही यह थी कि पूछते हैं कि मोक्ष क्या है? कहां है? आत्मा कहा, जाएगी? कहां पहुंचेगी, किसी सीढ़ी पर बैठेगी, किस सिद्ध अवस्था में बैठेगी, वह हमें पहले समझाइए। वह यह नहीं पूछता है कि बंधन क्या है? उसका आग्रह अगर बहुत गौर से देखें, तो मेरे लिए जो पुरानी मेटाफिजिकल एप्रोज है, वह ग्रीड की ही एप्रोज है, वह लोभ की ही एप्रोज है। क्योंकि जब आप यह पूछते हैं कि वहां मुझे क्या मिलेगा? तो आपका लोभ नाम पूछ रहा है कि पहले यह बताइए, मैं पक्का कर लूं, कोई गारंटी है वहां मिलने की नहीं? वहां मिलेगा क्या? नहीं तो हम यहां भी छोड़ दें, और वहां हमें कुछ मिले नहीं। तो इससे बंधन ही बेहतर है--कम से कम पहचाने हुए हैं, अपने हैं। और इनमें रहते- रहते आदी हो गए हैं।
एक कैदी यह पूछता है कि आप ठीक मेरी जंजीर खोज रहे हैं, लेकिन रुक जाइए। पहले मुझे यह बताइए कि जंजीर खुल जाने से मुझे मिलेगा क्या? तो यह पूछ रहा है कि जंजीर तो फिर भी परिचित है, मेरे साथ इतने दिन रही है, मेरा नाता-रिश्ता हो गया है। और अब बोझ भी नहीं मालूम पड़ता है, अब आदी हो गए हैं। और आप कहते हैं बंधन तोड़ देने हैं, फिर पीछे क्या होगा? वहां क्या है? स्वतंत्रता क्या चीज है, पहले मुझे बता दीजिए, फिर मेरी जंजीर छूना। स्वतंत्रता को मैं समझ लूं! लेकिन मेरा जोर इस बात पर है कि स्वतंत्र हुए बिना स्वतंत्रता को समझा नहीं जा सकता।
यह मामला वैसा ही है कि एक आदमी कहे कि मैं पानी में तभी उतरूंगा जब मैं तैरना सीख लूंगा। और वह दूसरा आदमी कहे कि बिना पानी में उतर तुम तैरना सीख नहीं सकते हो। वह कहे, मैं बिना तैरना सीखे कैसे पानी में उतर सकता हूं? मैं किनारे पर खड़ा हूं। जब मैं तैरना सीख लूंगा तब मैं पानी में उतरूंगा। अब बड़ी मुश्किल हो गई। वह आदमी कहता है, मैं तैरना सीख लूंगा तब पानी में उतरूंगा और सिखाने वाला कहता है, पहले बिना पानी में उतारे तुम्हें तैरना सिखाया नहीं जा सकता सकता। पानी में उतरे बिना कोई तैरना सीखता नहीं। मुश्किल हो गई बात। अब यह बात यही ठहर जाएगी।
मेरे और आपके बीच ऐसी मुश्किल खड़ी होती है। मुश्किल कुल जमा इतनी कि मैं कहता हूं। हमें कि पानी में उतरना पड़ेगा, अगर तैरना सीखना है। और आप बहुत कैल्कुलेटिंग हैं, और आप कहते हैं कि बिना तैरना सीखे पानी में उतरना खतरनाक है क्योंकि पानी में उतरें, और तैरना हम जानते नहीं।

प्रश्नः लेकिन इसके लिए कोई कार्यवाही तो होगी न?

कार्यवाही होगी, लेकिन एप्रोच की बात है। सारी कार्यवाही होगी, एप्रोच आपकी पाजिटिव हो जाती है, मेरी एप्रोच निगेटिव है। आप चाहते हैं कि वहां कुछ मुझे मिलने को होता तो मैं वहां जाऊं। मैं कहता हूं, मैं कहता हूं कि यहां जहां हमारे यहां आपके पास कुछ भी नहीं है, कुछ भी नहीं मिल रहा है। जो दुख और पीड़ा में हैं, इसको जानिए तो आप वहां जाने के लिए आतुर हो उठेंगे। और यह जाना एक तरह का जाना होगा। और वह जाना बिल्कुल और तरह का जाना होगा। बल्कि मेरी दृष्टि में जब तक एक आदमी हमेशा तय करके जाता है कि वहां मुझे क्या मिलेगा तब मैं जाऊंगा, तब तक वह बंधन के बाहर कभी नहीं जाता क्योंकि यह मिलने की आकांक्षा बंधन की जड़ है। अगर कोई आदमी मोक्ष का भी पता ठिकाना लगाकर जाता है, बिल्कुल पुलिस कार्यवाही करके पता लगा लेता है

कि वहां क्या मिलेगा और फिर मोक्ष में जाता है, यह आदमी मोक्ष में कभी जा नहीं सकता। क्योंकि मोक्ष का मतलब ही यह है, उस अज्ञात में, उस अनजान में, जिसका हमें कोई पता नहीं है, प्रवेश करना। बंधन का पता होता है। स्लेवरी डिफाइंड होती है, फ्रीडम डिफाइन नहीं होती।
यह जो सारा मामला है, सारी गुलामी की डिफीनेशन हो सकती है कि यह है गुलामी; और फ्रीडम की कोई डिफिनेशन नहीं हो सकती है। फ्रीडम का मतलब ही है अनडिफाइनेबल। फ्रीडम का मतलब ही यह है कि जिसकी कोई सीमा नहीं है। इसलिए अनडिफाइनेबल हो जाता है। कुल जमा, जोर मैं देना चाहता हूं वह यह है कि आपकी साइकोलॉजिकल, आपकी पूरी मानसिक वृत्ति कही पहुंचने की फिकर छोड़ दे। जहां आप हैं, उसको समझने की फिकर करें तो आप पहुंचना शुरू हो जाएंगे।